|| ओ३म् ||

भूमिका ||



उस परब्रह्म परमात्मा को अनेकशः धन्यवाद देना चाहिये जिसकी प्रेरणा और परमकृपा से सब मनुष्य अपने २ कर्त्तव्यधर्मों में प्रवृत्त होते हैं, उस परमात्मा ने अपनी परमदयालुता से सब प्राणियों के हितार्थ उस सर्वोत्तम विद्या का उपदेश किया कि जिससे संसार और परमार्थ का सुख सिद्ध हो। और परमेश्वर वही हो सकता है जिसके ऊपर कोई न हो और उसकी आज्ञा भी सब के लिये एकसी होनी चाहिये यदि किसी समुदाय को अन्य उपदेश दे तथा किसी को भिन्न आज्ञा देवे तो समझिये कि उन दो समुदायों मे विरोध करानेवाला ईश्वर ही हो जावे फिर ऐसे को ईश्वर मानना सिद्ध न हो सकेगा इसलिये ईश्वर वही है जो सब के लिये एक हो और उसका उपदेश वा आज्ञा भी सब के लिये एकसी होवे। प्रयोजन यह है कि संसार में परस्पर विरुद्ध अनेक मत जो प्रवृत्त हैं उन सब का मूल ईश्वर नहीं है, किन्तु मनुष्य लोगों की ओर से है। इन मतो में जो २ बातें सब की एकसी मिलती हैं वे सब ईश्वरीय विद्या वेद से वहां २ गई हैं। जैसे—ईश्वर को प्रायः मानते हैं और बहुधा ईश्वर के गुण कर्म स्वभावों को भी एक प्रकार से मानते हैं वे सब ठीक हैं और जो २ ईश्वर विषय मे भी परस्पर विरुद्ध गुणादि मानते हैं वे सब बीच के बनावटी हैं। जो लोग नास्तिक समझे जाते हैं वे भी किसी सिद्ध-पुरुष को सर्वज्ञादिगुणविशिष्ट अपना इष्टदेव मानते हैं पर उसको अनादि सनातनसिद्ध सर्वशक्तिमान् सृष्टिकर्त्ता नहीं मानते। इस मन्तव्य में यह विरोध आता है कि जो अनादि न होगा और बीच में सिद्ध हो जायगा तो वह अपने उत्पन्न होने से पाहिले का हाल नहीं जान सकता क्योंकि पिता के जन्म का दर्शन पुत्र को होना कदापि सम्भव नहीं है। जब ऐसा है तो उसको सर्वज्ञ मानना कदापि ठीक नही है। इस अनेक प्रकार के मतान्तर का फैलना मनुष्यो की अविद्या से होता है पर इस सृष्टि में जो २ सर्वज्ञहितकारी विद्वान् होते हैं वे प्रायः यही यत्न करते है कि ईश्वरीय व्यवस्थानुसार सब का मन्तव्य ठीक २ हो जावे परस्पर का वैरविरोध मिटकर शुद्ध वैदिकधर्म की सर्वत्र प्रवृत्ति होवे। इसी के अनुसार श्रीमत् दयानन्दसरस्वतीजी महाराज ने भी प्रयत्न

किया कि सब मतों का वैर विरोध मिटा के एक वैदिकमत को सब माने, पर मतवादी लोग ऐसे पक्षपात में ग्रस्त हो रहे है कि आर्य लोग आंख से देखते हैं तो हम नाक से देखने लगे जब से श्रीमदुक्त स्वामीजी ने वैदिक आर्यधर्म की उत्तमता का उपदेश किया है तब से अनेक मतवादियों ने (अपनी बनावटी लीला को कटते देखकर) जहां तहां शास्त्रार्थ करने का प्रारम्भ किया परन्तु वे लोग शास्त्रार्थ करने में यदि विचारपूर्वक पक्षपात छोड़ के केवल सत्यासत्य के निर्णय के लिये प्रवृत्त हों तब तो अवश्य अच्छा फल होवे, परन्तु उन लोगों की दृष्टि यह रहती है कि हमारे पक्ष की मूर्खमण्डली (जिससे हमारा सब धनादि का काम निकलता है, गड़बड़ा कर हमारे फन्दे से न निकल जावे इसलिये शास्त्रार्थ का हल्ला करके अपना विजय सब को प्रकट कर देवेंगे। आजकल अनेक स्थलों में शास्त्रार्थ होते हैं पर उनसे ऐसा कोई पूर्णलाभ नहीं होता कि जो अनेक सत्पुरुषों को सत्यासत्य मालूम होजावे तथापि बुद्धिमान् लोग उस विवाद में यथोचित बलाबल समझ ही लेते हैं इससे वैदिकधर्म की उन्नति शनैः २ होती ही जाती है ॥

जिला आगरा में एक फ़ीरोज़ाबाद नामक कस्बा है वहां जैनियों का तीर्थ है प्रतिवर्ष चैत्र में मेला होता है, यह प्रसिद्ध है कि जिन नगरों में जैनी आदि की पोपलीला के मुख्यस्थान हैं वहां आर्य्यसमाज की उन्नति वा स्थिति होना कठिन होता है इसी के अनुसार नगर फ़ीरोज़ाबाद में भी आर्य्यसमाज का आरम्भ होना जैनियों को महाअनिष्टकारी हुआ, उन्होंने समाज तोड़ने के कई एक उपाय किये दो एक वार समाज में अपना आदमी भेजा कि हम मतविषय में शास्त्रार्थ करना चाहते हैं, समाज से पत्रद्वारा उत्तर दिया गया कि हम भी शास्त्रार्थ करने को कटिबद्ध हैं इस प्रकार की बातें आर्य्यसमाज फ़ीरोज़ाबाद और उस नगर के जैनियों में हो ही रही थीं कि इतने में सनातन आर्य्यधर्मोपदेशक श्रीस्वामि भास्करानन्दसरस्वतीजी सं० १९४४ फाल्गुन मास में इस फ़ीरोज़ाबाद नगर में पधारे और सनातनधर्म की वृद्धि पर व्याख्यान दिया। इस पर इसी उक्त नगर के रईस जैनधर्मावलम्बी सेठ फूलचन्दजी ने कहा कि मतविषय पर वार्त्ता होनी चाहिये जिसका मत ठीक और सनातन निकले द्वितीय पक्षवाला उसी का ग्रहण करे (स्वा० भा० जी के साथ) फूलचन्द ने और उक्त स्वामीजी ने परस्पर प्रतिज्ञा की कि जिसका पक्ष गिर जावे वह द्वितीय पक्ष को स्वीकार करे। तब स्वा० भा० जी ने कहा कि तुम्हारी ओर से जो कोई शास्त्रार्थ करनेवाला हो उसको बुलाओ इस पर सेठ फूलचन्दजी ने पं० पन्नालाल

जैनधर्मी को बुलाया वे किसी विशेष कारण से न आये तब यह बात निश्चित हुई कि प्रथम चैत्रसुदि ३ से ८ तक मतविषय पर आर्य और जैनियों का शास्त्रार्थ हो। इस बात का लेख भी समाचारपत्रों में छप गया था और यह बात सम्पूर्ण हिन्दुस्तान में प्रकट होगई दोनों पक्षवालों ने अपने २ पक्ष के पण्डितों को बुलाना प्रारम्भ किया। आर्य्यों की ओर से शास्त्रार्थ करनेवाले पण्डित चैत्रसुदि द्वितीया तक आगए, परन्तु जैनपक्ष के पण्डित द्वितीया को नहीं आये, आर्य्यों की ओर से द्वितीया के दिन जब पण्डित लोग आगये तब सर्वसम्मति के अनुसार पं० गंगाधरजी उपदेशक आर्य्य-समाज जसवन्तनगर ने सेठ फूलचन्दजी से जाकर कहा कि शास्त्रार्थ कल तृतीया से प्रारम्भ होना चाहिये जैसा कि सर्वत्र प्रसिद्ध हो चुका है इसलिये (पहिले से) आज ही शास्त्रार्थ के नियम और विषय नियत हो जाने चाहियें जिससे शास्त्रार्थ होते समय कालात्यय न हो, इस पर उक्त सेठजी ने उत्तर दिया कि हमारे पण्डित लोग तृतीया को आजावेंगे उसी समय सब नियमादि हो जावेंगे। जब जैन पण्डित द्वितीया की रात को आगये तो उसी समय में समाज के मन्त्री और उक्त पं० गंगाधरजी ने फिर जाकर सेठजी से कहा कि शास्त्रार्थ के नियम बँधजाने चाहियें तथा प्रबन्धकर्त्ता और सभापति भी नियत होजाने चाहियें जिससे शास्त्रार्थ के समय में किसी प्रकार की गड़बड़ न हो तब उन्होंने यह कहा कि ये सब बातें सभा में इकट्ठे हो-कर कर लेवेंगे। इस पर बहुत कहने सुनने से दोनों पक्ष की ओर से दो २ प्रबन्ध-कर्त्ता नियत किये गये आर्य्यों की ओर से सभापति आर्य्यसमाज फीरोजाबाद श्रीमान् चतुर्वेदी कमलापतिजी और पं० गङ्गाधरजी और जैनियों की ओर से लाला मञ्जू-लाल साहब तथा लाला प्यारेलाल साहब नियत हुए फिर एक पंचम पुरुष सरपंच सभापति के लिये कहा गया वह पुरुष सरकारी ओहदेदार वकील आदि हो वा शहर का कोई प्रतिष्ठित रईस हो वा कोई ज़मीदार हो चाहें किसी मज़हब का क्यों न हो उसको दोनों पक्षवाले निष्पक्षपाती धर्मात्मा समझ के स्वीकार करें। वह सभा-पति शास्त्रार्थ के नियम और विषयों पर दोनों पक्ष के शास्त्रार्थकर्त्ताओं के हस्ता-क्षर करा अपने पास रक्खे जो कोई नियम वा विषय से चलायमान हो उसको य-थोचित रोके। इस पर सेठ फूलचन्दजी ने कहा कि सभापति और नियमादि सब प्रातःकाल नियत कर लिये जावेंगे और शास्त्रार्थ का समय भी उसी समय नियत कर दिया जायगा। मन्त्री और पं० गङ्गाधरजी सब को धन्यवाद देकर अपने स्थान को चले आये और आये हुए आर्य पंडितजनों से निवेदन किया कि उन्होंने प्रातःकाल शा-

स्त्रार्थ के नियम पंच और विषय स्थिर करने के लिये कहा है सब की सम्मति हुई कि प्रात:काल ही सही। तब प्रात:काल सेठजी साहब ने रात्रि की बातों पर कुछ ध्यान और प्रवन्ध न किया। अर्थात् ऐसा भुलादिया कि जानो स्वप्न हुआ था, प्रात:काल और का और ही ठाठ रचमारा कि एक पत्र संस्कृत का (जिसमें किसी के हस्ताक्षर भी नहीं थे) लिख भेजा, इस पर मंत्री ने एक पत्र उर्दू ज़वान में लिखा कि आप कृपाकर यह लिख भेजिये कि यह पत्र आपका ही है ? । इस पर सेठजी साहब के अनुयायी पण्डित आदि वहुत लाल ताते हुए और कहा कि हमको म्लेच्छभाषा क्यों लिख भेजी, इस पर मन्त्री और पं० गङ्गाधरजी त्रिपाठी पुन. सेठजी के पास गये और कहा कि आपने पंचम प्रवन्धकर्त्ता पुरुष और नियमों का कुछ प्रबन्ध अभी तक न किया तब उन्होंने उस पत्र पर पं० छेदालाल के हस्ताक्षर करा दिये और उत्तर दिया कि नियम और पंचम मनुष्य का सब निश्चय पत्रों से हो जायगा आप पत्र का उत्तर दीजिये, मन्त्री ने फिर भी निवेदन किया कि ऐसी वातों के निश्चयार्थ पत्रो की लिखा पढ़ी करने की आवश्यकता नहीं किन्तु दोनों पक्ष के भद्रपुरुष मिलकर मकान, नियम और जिन विषयों पर शास्त्रार्थ हो निश्चय कर लेवे उन्होंने मेरे कथन को सुना न सुना कर यही जवाब दिया कि आप पत्र का उत्तर दीजिये, मन्त्री ने कहा वहुत अच्छा परन्तु यह काम इस रीति से कदापि अच्छा न होगा, मन्त्री ने अपनी पण्डितमण्डली को वह उक्त संस्कृत का पत्र हस्ताक्षर कराया हुआ उत्तर देने को दिया, इस पत्र के उत्तर की शीघ्रता करने में उनका अभिप्राय यह था कि हमने जो अपनी ओर से दाम देकर पण्डितों को भाड़े का टट्टू वनाया है आर्य्य लोग इस संस्कृत के पत्र का उत्तर नहीं दे सकते हैं, इसलिये मिलकर प्रवन्ध करना चाहते है और जैनियों का मुख्य भीतरी आशय यह था कि इस प्रकार पत्र भेजने करने में ही कुछ समय व्यतीत हो जवतक कोई और कारण खड़ा हो जायगा तो शास्त्रार्थ होना वचा रहे और आर्य्यों का अभिप्राय था कि साधारण वातों के लिये पत्रव्यवहार से कालक्षेप न हो और मुख्य शास्त्रार्थ का आरम्भ शीघ्र होवे ।

वह जैनियों का प्रथम संस्कृत पत्र यह है.—

यथा—(श्रीः)

श्रीमदार्य्यसमाजसभ्यैः फिरोजाबादनगरस्थजैनधार्मिकृतनव्युत्तरमुदोऽवगन्तव्यम् ।

शराब्ध्यङ्कद्वन्दीयप्रथमचैत्रशुक्लपक्षगुर्वन्विततृतीयायां शास्त्रार्थो भविष्यतीति तत्र २ भवद्भिरगणितम्मुद्रितं च अतस्स पाङ्क्तघण्टाध्वननतः पाथोऽधिघण्टाध्वननावध्यद्यैव कर्त्तव्यः परन्तु शास्त्रार्थपदशक्यस्य शास्त्रीयवाक्यतात्पर्य्यावबोधनिर्णायकतया शास्त्राणां सस्कृतरूपत्वेन च परस्परसंस्कृतालापपूर्वक एव शास्त्रार्थः कर्त्तव्य इत्यस्मदीयेप्सा, शास्त्रार्थानन्तरं शास्त्रार्थविषयः संस्कृते भाषायां च जगद्वेदित्यन्नेयः । शास्त्रार्थापेक्षितजयाजयनिर्णेतृमध्यस्थाविवेचनं समक्षतः परस्पराभिलाषातोवानुष्ठेयः, एतावतैवालमल्पाङ्कनतोऽप्यभिप्रायावगन्तृज्ञेषु ।

संवत् १९४५ प्रथम चैतशुक्ल ३ गुरुवारे

भवत्स्नेहिनः फीरोजाबादस्था जैनधर्मावलम्बिनः नियतसमयात्पूर्वं पत्रोत्तराभिलाषिणश्च—ह॰ छेदालालजैन ।

भाषार्थ—श्रीमान् आर्य्यसमाज के सभ्यों को फीरोजाबाद नगरस्थजैनधर्मवालों ने किये नमस्कार के पश्चात् यह जानना चाहिये कि सं० १९४५ के प्रथमचैत्र शुक्लपक्ष तृतीया बृहस्पतिवार को शास्त्रार्थ होगा इस प्रकार उन २ शहर आदि मे आप लोगों ने कहा और छपाया है इससे वह शास्त्रार्थ १० बजे से ४ बजे तक आज ही कर लेना चाहिये,परन्तु शास्त्रार्थपद का जो अभिप्राय है वह शास्त्रसम्बन्धी वाक्यों से निकले तात्पर्य्य के बोध का निश्चय करानेवाला होने और शास्त्रों के संस्कृतरूप होने से आपस में संस्कृतभाषण पूर्वक शास्त्रार्थ करना चाहिये यह हमारी इच्छा है, शास्त्रार्थ के पश्चात् उसका विषय संस्कृत में और भाषा मे अनुवाद कराके जगत् को विदित करना चाहिये, जय पराजय का निश्चय करनेवाला एक मध्यस्थ विद्वान् शास्त्रार्थ में अपेक्षित है उसका विवेचन सामने मिलकर वा परस्पर की इच्छा से होना चाहिये। इस थोड़े ही लेख से भी अभिप्राय जानने वालों में उत्तम ज्ञाताओं में समाप्ति है।

समीक्षा—सब महाशयों को ध्यान रखना चाहिये कि पूर्वोक्त जैन धर्मियो का संस्कृतपत्र कैसा है, इसमें शब्द, अर्थ और सम्बन्ध की कहां २ अशुद्धि हैं सो यह पत्र हमारे भ्रातृवर्गस्थ पं० जियाला तथा पं० मिहिरचन्द्रजी की सहायता से लिखा हुआ है क्योंकि इसका पूर्ण अनुमान इससे हुआ कि जैनों के पं० छेदालालादि ने जो पत्र सभा में सबके समक्ष लिखे (जिनमे मिहरचन्द्रादि की सहायता नहीं ले सके) हैं उनमें इससे बहुत अधिक अशुद्धियां है। अर्थरूप अशुद्धियां तो

उनके भाषार्थ से ज्ञात हो जावेगा (शराव्ध्यङ्के द्वन्दीय) यहां (द्वन्द्व) ऐसा चाहिये अस्तु, छोटी २ बातों पर ध्यान न देकर बड़ी अशुद्धि देखिये (मध्यस्थ विवेचनं ० ० ० वा नुष्ठेयः) विवेचनं नपुंसक लिङ्ग का विशेषण अनुष्ठेयः पुंलिङ्ग के साथ किया है संस्कृतज्ञ लोगों के सामने यह अशुद्धि छोटी नहीं है इससे यह अनुमान होता है यदि धनादि के लोभवश होकर नास्तिक पक्ष की सहायता न करते तो पं० जियालालादि से ऐसी अशुद्धि होनी सम्भव न थी, ईश्वरविमुखों को सहायता देने से इन पर अन्तर्यामी ईश्वर की अप्रसन्नता हुई जिससे उनकी बुद्धि स्वस्थ न रही। आस्तिक जन अपने सब काम ईश्वर की सहायता से करते हैं ॥ इस उक्त संस्कृत पत्र के उत्तर में आर्य्यसमाज का संस्कृत पत्र ही द्वारा उत्तरः—

ओ३म्

श्रीमज्जैनधर्मावलम्बिषु

भवतां पत्रं समागतं रात्रौ यन्निर्णीतं तस्मिन् विषये किमपि न लिखितं, शास्त्रार्थप्रबन्धकर्त्तारः पञ्चसज्जनाः पूर्वं नियोजनीयाः पश्चात्स्थानं निर्णेतव्यं यत्र शास्त्रार्थः स्यादिति। ततो यैर्नियमैः शास्त्रार्थः स्यात्तेऽपि निश्चेतव्याः। यत्र २ विषये शास्त्रार्थेन भवितव्यं सोऽपि लेख्य एव।

संवत् १९४५ चैत्रशु० ३. हस्ताक्षराणि गंगारामवर्म्मणः
फीरोजाबादस्थार्य्यसमाजामात्यस्य

भाषार्थ—श्रीमान् जैनधर्मावलम्बि योग्य—पत्र आपका आया रात को जो निश्चय हुआ था उस विषय में आपने कुछ नहीं लिखा। पहिले शास्त्रार्थ के प्रबन्धकर्त्ता पांच सज्जन पुरुष नियुक्त करने चाहिये, इसके पश्चात् जहां शास्त्रार्थ हो उस स्थान का निश्चय करना चाहिये, इसके अनन्तर जिन नियमों के अनुकूल शास्त्रार्थ हो उनका निश्चय करना योग्य है, जिस २ विषय में शास्त्रार्थ हो वह भी लिखना चाहिये।

इस पत्र के जाने पर जैनियों का द्वितीय पत्र जो संस्कृत मे आया वह यह है:—

श्रीमदार्यमतानुयायिनः

भवदीरितं पत्रमुपलब्धम्

शास्त्रार्थसमयः संस्कृतएव भविष्यतीति नियमः। मध्यस्थभवनप्रकारश्च पूर्वपत्रएव लिखितः मञ्जूलालप्यारेलालौप्रबन्धकर्त्तारौ जैनपाठशालास्थानं च हस्ताक्षराणिकारयितुमागतेभ्यो गंगारामवर्म्मभ्योऽवर्णि विषयनिर्णयश्च शास्त्रार्थ-

काले भविष्यति यतो वयं यूयञ्च न दूरस्थाः परन्तु समयनियममध्यस्थानां- ल्लिखितानामप्युत्तरं भवद्भिर्नालेखि । शास्त्रार्थलिखितसमयमतीत्यपत्रोत्तरप्रदाने किं कारणम् ।

संवत् १९४५   १२ बजे दिन के   ह० छेदालालजैनधर्मिणः
प्र० चै० शु० ३ सू०

भाषार्थ—श्रीमान् आर्य्यमत के अनुयायियो ! आपका भेजा पत्र मिला शास्त्रार्थ का समय वही होगा जो हम पूर्व संस्कृत में लिख चुके हैं और मध्यस्थ होने का प्रकार भी पूर्व पत्र में लिख चुके हैं। हमारी ओर से मंजूलाल प्यारेलाल प्रबन्धकर्त्ता होंगे । शास्त्रार्थ का स्थान जैनपाठशाला होना चाहिये सो हस्ताक्षर कराने को आये गङ्गाराम वर्मा से कह दिया था । विषय का निर्णय शास्त्रार्थ होने के समय हो जायगा क्योंकि हम और तुम दोनो दूर नहीं हैं, परन्तु समय, नियम और मध्यस्थ विषयक उत्तर आपने नहीं लिखा । शास्त्रार्थ का समय जो १० बजे का लिखा था उसके पश्चात् उत्तर देने में क्या कारण है ?॥

इस पर आर्य्यसमाज की ओर से उत्तर (संस्कृत ही में)

ओ३म्

मावन्मारजित्क्षान्तसदसदुदन्तालब्धगरिष्ठवरिष्ठाः

तत्र भवतां पत्रमातुङ्गितम् । श्रुतार्थानेहाः पूर्वभाविनियमेतरेतरोररीकृतानन्तरं वादिप्रतिवादिभ्यां समसातजनने चोरीकर्त्तव्यः जयाजयनिर्णेता कश्चिदपि भवितकुं नार्हतकि कस्यचित्सार्वभौमसर्वपरीक्षकाधिगतयाथातथ्यार्थस्य पक्षद्वयविवेचनसामर्थ्याधिष्ठितत्वाभावात् । वादिप्रतिवादिनोर्लेखनद्वारास्पष्टीकृतो विषयएव जयाजयसूचको भविष्यतीति मन्यध्वम् । यच्चोक्तं शास्त्रार्थकालएव विषयो निर्णेय इति तन्न कुतः सति कुड्ये चित्रं भवतीतिवत् पूर्वमेव विषयो निर्णेतव्यः । यच्चोल्लिखितं शास्त्रार्थसमयमतीत्योत्तरप्रदाने किं कारणमिति तत्त्वस्माभिरङ्गीकृतमन्तरेणात्ययनं वक्तुमशक्यम् ॥

प्र० चै० शु० ३ सं० ४५   ह० गङ्गारामस्य

भाषार्थ—श्रीमान् सहनशील सत्यासत्य को प्राप्त होनेवाले महाजनों में श्रेष्ठ जैनधर्मावलम्बियो !

आप का पत्र आया, शास्त्रार्थ का समय पूर्व होने वाले नियम परस्पर स्वीकृत

होजाने के पश्चात् दोनो पक्षवालो की सम्मति से स्वीकार करना चाहिये, जय पराजय का निश्चयकर्त्ता कोई निर्ज मनुष्य नही हो सकता। कोई सब पृथिवी पर सर्वोपरि शास्त्री सत्यवक्ता पक्षपातरहित यथार्थभाव का ज्ञाता दोनो पक्ष का विवेचन करने में समर्थ अधिष्ठाता हो वह मध्यस्थ होसके सो सर्वगुणाकर पुरुष का मिलना प्राय: असम्भव होने से मध्यस्थ होना आधुनिक समय पर दुर्लभ है इसलिये वादिप्रतिवादि के लेखद्वारा स्पष्ट किया हुआ विषय ही जय पराजय का सूचक हो जायगा अर्थात् उस लेख से अपनी २ बुद्धि के अनुसार दोनों पक्ष में बलाबल समझ लेंगे। और जो आपने कहा कि शास्त्रार्थ होते समय विषय का निश्चय करलेगे सो मेरी अल्प बुद्धि से ठीक नही क्योंकि जब तक भित्ति (दीवार) न बन जावे उस पर चित्र विचित्र चिन्ह धरना बन नहीं सकता इसी प्रकार पहिले विषय का निश्चय कर लिया जाय तब उस पर शास्त्रार्थ का आरम्भ हो सक्ता है। और जो लिखा कि शास्त्रार्थ का समय होजाने बाद उत्तर देने में क्या कारण है सो जब केवल अपने पक्ष की सम्मति से तुम लोगो ने नियत किया और हम लोगों की उस पर कुछ सम्मति न हुई तो (इकतर्फी डिगरी हुई) हमारा पत्रोत्तर देना काल व्यतीतकर हुआ यह तुम्हारा कहना ठीक नहीं है।

इस पर जैनियों का जो तृतीय पत्र आया वह यह है कि:—

श्रीमदार्यमतानुसारिण:

द्वितीयपत्रङ्घण्टात्रयकालात्ययउपलब्धम्

भवद्भिर्जयाजयनिर्णेतृमध्यस्थासम्भवोऽभाणि, लेखद्वारा जयाजयस्पष्टताऽङ्गीकृता शास्त्रार्थसमयात्पूर्वम्विषयनिर्णयश्चापेक्ष्यते शास्त्रार्थस्थानसमयसंस्कृतभाषाशास्त्रार्थविषयेकिञ्चिदपि नाऽभापि, यदि विषयनिर्णयोत्तरमेव शास्त्रार्थचिकीर्षा तर्हि समाचारपत्रेषु विषयनिर्णयमन्तरा मुद्रापणङ्किंविचार्य्याकारि मध्यस्थासम्भवेशास्त्रार्थासम्भव:। लेखत: शास्त्रार्थस्य वादिप्रतिवादिनोर्विदेशस्थत्वेऽपि सम्भवेऽत्र तत्तत्समाजमन्त्र्यादीनां सङ्गमकृते: किं प्रयोजनम्। तथापि यदि शास्त्रार्थचिकीर्षा तर्हि सप्तघण्टाध्वनिमारभ्यदशघण्टाध्वनिपर्य्यन्तं जैनपाठशालास्थान आगत्य कर्त्तव्य: विषयोऽप्येतत्पत्रोत्तरे भवद्भिरेव लेख्य:, नोचेदलम्वृथा समयात्ययेन।

सं० १९४५ प्र० चै० शु० ३ व ४ वजे   ह० छेदालालजैनधर्मिण:।

भाषार्थ—श्रीमान् आर्य्य मतानुयायियो ! आपका दूसरा पत्र तीन घण्टा में मिला, आपने जयपराजय के निश्चयकर्त्ता मध्यस्थ का होना असम्भव कहा और लेखद्वारा जयपराजय स्पष्टता स्वीकार की और शास्त्रार्थ होने के पहिले विषय का निर्णय चाहते हो। शास्त्रार्थ का स्थान, समय तथा संस्कृत वा भाषा में होने के विषय में कुछ नहीं कहा जो विषय का निश्चय होने पश्चात् ही शास्त्रार्थ करने की इच्छा है तो समाचारपत्रों में विषय का निर्णय किये विना क्या विचार के छपाया था (हमारा विचार है कि) मध्यस्थ का होना असम्भव है तो शास्त्रार्थ होना भी असम्भव, लेखद्वारा शास्त्रार्थ तो वादीप्रतिवादी के विदेशस्थ होने मे भी हो जाना सम्भव है। फिर उस २ समाज के मन्त्री आदि के यहां एकत्र करने को क्या प्रयोजन था, तथापि यदि शास्त्रार्थ करने की इच्छा है तो ७ बजे से १० बजे तक जैनपाठशाला स्थान में आकर करना चाहिये। शास्त्रार्थ का विषय भी इस पत्र के उत्तर में आप ही लिखिये और यह न हो तो व्यर्थ समय न खोना चाहिये अर्थात् शास्त्रार्थ का नाम भी न लेना चाहिये ॥

विशेष—सब महाशयों को ध्यान देना चाहिये कि हमारे लेख में और इनके लेख में क्या भेद है। हमने लिखा था कि दोनों पक्ष की सम्मति से पहिले नियम स्थिर हो जावें फिर शास्त्रार्थ के समयादि का विचार किया जावे सो नियमों के लिये तो कुछ उत्तर न दिया इसका कारण एक तो यह है कि जैनी लोग उस पत्र के अभिप्राय को यथावत् समझे ही नहीं और कदाचित् कुछ समझे भी हों तो शास्त्रार्थ करने से डरते हैं और बखेड़ा करके पीछा छुड़ाया चाहते हैं। शास्त्रार्थ का विषय समाचारपत्रों मे छपाया तो उसका अभिप्राय यह कोई सिद्ध नहीं कर सकता कि विना ही नियम और विषय के शास्त्रार्थ हो जायगा। ऐसा हो तब तो बिना कारण के भी कार्य्य हो जाया करे जब कोई कहे कि मैं अमुक समय भोजन बनाऊंगा तो उस पर ऐसा आक्षेप नहीं कर सकते कि भोजन बनाने की प्रतिज्ञा के समय यह क्यों नहीं कहा कि मैं आटा से भोजन बनाऊंगा। इस जैनियों के पत्र में कई अशुद्धि हैं जैसे अभाणि अभाषि आदि स्थान में प्रयुक्त हैं (पूर्वेम्विषय) (किम्विचार्य) (दलम्वृथा) इत्यादि में परसवर्ण अनुस्वार को मकार लिखना सर्वथा अशुद्ध है क्योंकि ओष्ठ्य वकार के परे परसवर्ण हो सकता है दन्त्योष्ठ्य के परे नहीं होता। इत्यादि अनेक २ अशुद्धियां हैं ॥

इस पर आर्य्यसमाज की ओर से चतुर्थ उत्तरः—

ओ३म्

॥ श्रीमत्सौमन्तमतावलम्बिषु ॥

भावत्कपत्रमागतमालोक्येदमुत्तरमाविष्क्रयते शास्त्रार्थस्थानसमय, संस्कृतभाषाविषयकमुत्तरं प्राकृतभाषानिर्मितनियमेष्वाविष्कृतमस्माभिः। समाचारपत्रेषु विषयनिर्णयमन्तरेणैव शास्त्रार्थो भवितुमशक्य इत्यत्र किं बाधकं मन्यते भवद्भिः। शास्त्रार्थः सम्मुख एव स्यात्तस्य लेखनं तु सर्वसाधारणोपकारार्थं परिणामनिष्कर्षणार्थं च कर्त्तव्यमेव। समयश्चभवद्भिर्लिखित एव स्वीक्रियतेऽस्माभिरपि। यदि तत्र भवन्तो वास्तवेन शास्त्रार्थं चिकीर्षन्ति तर्हि मुहुर्मुहुः पत्रगमनागमनेन किमपि प्रयोजनं नास्ति किन्त्वस्मल्लिखितशास्त्रार्थविषयान्प्राकृतभाषानिर्मितनियमांश्च स्वीकुर्वन्तु यदि काचिद्विप्रतिपत्तिःस्यात्तदाभिमतविषयान्नियमांल्लिखित्वा प्रेरयन्तु। अद्यतु भवन्नियमितकाले शास्त्रार्थो भवितुमशक्यः। यतः कालादारभ्यसायं प्रातर्वाश्वो भविता स लेख्यो भवद्भिर्यतः पूर्वं वयमपि जानीयामेति शम् ॥

ह० गंगारामस्य, ४॥ बजे

भाषार्थ—श्रीमान् जैनधर्मियों के समीप निवेदन—

आपका पत्र आया उसका उत्तर दिया जाता है, शास्त्रार्थ का स्थान, समय और संस्कृत वा भाषा में होने के विषयक उत्तर भाषा में बनाये नियमों में हैं सो आप के पास भेजे जाते हैं। समाचारपत्रों मे हम लोगो ने ऐसा कहां छपाया है कि विषय निश्चय किये विना शास्त्रार्थ होगा, विषय का निश्चय हुए विना शास्त्रार्थ होना ही अशक्य है इसमें क्या आप कुछ बाधक समझते हो ?। शास्त्रार्थ सम्मुख ही होना चाहिये उसका लिखा जाना सर्वसाधारण के उपकारार्थ और परिणाम निकालने के लिये है। आप ने जो ७ बजे से १० बजे तक समय लिखा उसको हम लोग भी स्वीकार करते हैं ॥

यदि आप लोग वस्तुतः शास्त्रार्थ किया चाहते हो तो वार २ पत्रों के आने जाने से क्या प्रयोजन है ?, किन्तु हमारे लिखे शास्त्रार्थ के विषय और भाषा में बनाये नियमो को स्वीकार कीजिये, यदि कुछ विरुद्ध समझो तो अपने अभिमत विषय और नियमों को लिख कर भेजो। आज तो आप के नियत किये समय में शास्त्रार्थ होना अशक्य है पर कल प्रातःकाल वा सायंकाल जब से जब तक होना चाहिये सो आप लिखिये, जिससे हम लोग भी पहिले से जानलें और उद्यत रहें।

इस उक्त पत्र के साथ शास्त्रार्थ के निम्नलिखित नियम और विषय जैनियो के पास भेजे गये थे:—

१—शास्त्रार्थ में पांच पुरुष प्रबन्धकर्त्ता होने चाहियें, दो २ उभय पक्ष की ओर से रहें जिनको अपने २ पक्षवाले नियत करें एक प्रबन्धकर्त्ता सभापति मध्यस्थ हो जिसको दोनों पक्षवाले सम्मति कर नियत करें ॥

२—शास्त्रार्थ किसी मध्यस्थ के स्थान में व सरकारी स्थान में होवे अथवा अन्यत्र जिसको उभय पक्ष स्वीकार करे ॥

३—शास्त्रार्थ में दोनों पक्ष के बराबर मनुष्य होवें, किन्तु सर्वसाधारण मनुष्य न आने पावें ॥

४—दोनों पक्ष वाले शास्त्रार्थ का विषय आरम्भ से पहिले अपनी २ ओर से लिख के एक दूसरे के हस्ताक्षर कराकर सभापति के पास रक्खें ॥

५—सभा में एक बार में एक ही वादी वा प्रतिवादी बोले अन्य कोई किसी के बीच में न बोलने पावे ॥

६—प्रश्न के लिये जितना समय रहे उससे चौगुना समय उत्तरदाता को मिले ॥

७—अपनी २ पक्ष की ओर से अधिक से अधिक पांच २ मनुष्य शास्त्रार्थ के लिये नियत करें ॥

८—जो २ विषय शास्त्रार्थ के लिये नियत हो उसके विरुद्ध पक्ष पर कुछ भी विषय बीच में न छेड़ा जावे ॥

९—यह शास्त्रार्थ अक्षर २ यथावत् तीन प्रति में लिखा जावे, दो प्रति दोनों पक्ष की ओर से और एक सभापति की ओर से लिखी जावे। उन सब प्रतियों पर प्रश्न वा उत्तरदाता के तथा सभापति के हस्ताक्षर बीच २ होते जावें ॥

१०—शास्त्रार्थ दोनों पक्ष वालों की सम्मत्यनुसार संस्कृत मे ही हो पर प्रश्न वा उत्तर लिखाने पश्चात् उसका आशय नागरी भाषा में अनुवाद कर सभा के सब मनुष्यों को सुना दिया जाया करे ॥

११—एक साथ में एक प्रश्न ही हो सकेगा उस पर उत्तर प्रत्युत्तर पांच बार वा दश बार से अधिक न होना चाहिये ॥

१२—संस्कृत की अशुद्धि शुद्धि पर कुछ विचार आपड़े तो जिस शास्त्र के अनुसार निश्चय किया जावे उसको प्रथम नियत कर लेवें ॥

१३–शास्त्रार्थ जैनधार्मियों की इच्छानुसार दिन में वा रात्रि में हो पर चारघण्टे बाद उठने पर किसी पक्ष का पराजय न समझा जावेगा अर्थात् प्रतिदिन चार-घंटा से अधिक न होना चाहिये ॥

१४–उभय पक्ष के शास्त्रार्थकर्त्ता पण्डित लोग अपने २ मत को मानते अवश्य हों अर्थात् अन्यमतावलम्बि पुरुष अन्य की ओर से नियत न हो सकेगा ॥

१५–दोनों पक्ष वाले वादी प्रतिवादी प्रश्न वा उत्तर करने के लिये १० मिनट तक परस्पर सम्मति कर सकेंगे ॥

१६–यदि कोई अपने पक्ष के वादी प्रतिवादी को बदला चाहे तो सभापति की आज्ञा से बदल सकेगा । सभापति की आज्ञा विना सभा में कोई अन्य मनुष्य बीच में न बोल सकेगा ॥

शास्त्रार्थविषयाः ॥

१—अमन्यकर्तृकायाः सृष्टेः कर्त्ता सनातन ईश्वरः कश्चिदस्ति न वा ? ॥

२—जीवः कोऽस्ति तस्य चेश्वरेण कः संबन्धः ॥

३—चतुर्विंशतिस्तीर्थंकराः केऽभूवन् किं च तेषां सामर्थ्यम् ? । कियत्परिमाणानि च तच्छरीराणि ? ॥

४—जीवरक्षा च क्व पर्य्यन्तं भवितुं शक्या ? ॥

५—रथयात्रा काऽस्ति किमर्थं च कर्त्तव्या ? ॥

६—अतस्मिंस्तद्बुद्धिर्मिथ्याज्ञानं तत्त्वज्ञानं वेति ? ॥

१—भाषार्थ—जिसका एक सर्वोपरि से भिन्न कर्त्ता नहीं हो सकता ऐसी सृष्टि का कर्त्ता सनातन ईश्वर कोई है वा नहीं ? ॥

२—जीव कौन है और उसका ईश्वर के साथ क्या सम्बन्ध है ? ॥

३—चौवीश तीर्थंकर कौन हुए, उनका क्या २ सामर्थ्य था ? । और कितने २ बड़े उनके शरीर थे ? ॥

४—जीवरक्षा कहांतक हो सकती है ? ॥

५—रथयात्रा क्या है और किसलिये करनी चाहिये ? ।

६—और को और समझना मिथ्याज्ञान है वा तत्त्वज्ञान ? ।

इस पर जैनियों का जो पत्र आया वह यह है:—

श्रीमदार्य्यमतानुयायिनः !

समन्ततो लेखनेन च प्रबन्धकर्त्रादिनिर्णयेऽपि यूयन्नायाताः शास्त्रार्थनियत-

समयद्वयात्ययनञ्च कृतम्, इदानीं दशघण्टा ध्वनिता अतो यूयं शास्त्रार्थङ्कर्तुम-समर्था इत्यनुमितमित्यलम् ।

संवत् १९४५ प्र० चै० शु० ३ बृ, १० बजे ह० छेदालालजैनधर्मिणः

भाषार्थ—श्रीमान् आर्य्यमतानुयायियो ! सामने और लिखने द्वारा भी प्रबन्धकर्त्ता आदि का निश्चय होजाने पर भी तुम नहीं आये, शास्त्रार्थ के नियम किये दो समय भी टाल दिये अब दश बज गये इससे तुम लोग शास्त्रार्थ करने में असमर्थ हो यह अनुमान है ॥

विशेष—इससे पहिले जो पत्र भेजा उसके साथ शास्त्रार्थ के नियम और विषय लेकर मंत्री और श्रीचतुर्वेदी कमलापतिजी सभापति सेठ फूलचन्दजी के पास इस अभिप्राय से गये कि पत्रों द्वारा नियमादि शीघ्र निश्चय होने कठिन हैं और ऐसा ही झगड़ा रहा तो कल ता० १६ को भी शास्त्रार्थ न हो सकेगा, इसलिये सामने नियमों का निश्चय शीघ्र होकर कल से शास्त्रार्थ होने लगे। मंत्री ने सेठजी से कहा कि आप इन नियमों और विषयों को देख सुनकर सम्मति कर लीजिये इसपर भी उनके सहकारी लोगों ने यही उत्तर दिया कि सब बातों का निश्चय पत्र द्वारा कीजिये। इसपर मंत्री आदि ने बहुत कुछ कहा पर उन्होंने सिवाय लवड़धोंधों के प्रबन्ध की बात एक भी नहीं मानी, इसके पश्चात् मंत्री आदि चले आये और नियम जो ले गये थे उनको पत्र द्वारा भेजे उसका उन्होंने कुछ उत्तर न दिया और एक पत्र (पूर्वोक्त) फिर लिख मारा जिसका हमारे पत्र से कुछ सम्बन्ध नहीं हमने लिखा उन्होंने उत्तर कुछ और ही दिया (आम्रान् पृष्टः कोविदारानाचष्टे) इस उक्त पत्र में लिखते हैं कि " प्रबन्धकर्त्तादि का निश्चय हो चुका तो तुम नहीं आये " क्या हम लोग इनके नौकर हैं जो इनके बुलानेमात्र से इनके घर पर शास्त्रार्थ के लिये चले जाते और प्रबन्धकर्त्तादि का निश्चय कहां हो चुका था ? क्या मिथ्या लिखते लज्जा नहीं आई ! शास्त्रार्थ के मूलकारण नियमों पर तो अभी झगड़ा ही हो रहा है। विना ही नियमों के शास्त्रार्थ का समय अपने मन माना लिख भेजा, क्या तुम्हारा लिखा समय राजाज्ञा के तुल्य था जिसको हम निर्विवाद मान लेते (जो महाशय इसपर ध्यान देंगे उनको यथावत् ज्ञात हो जायगा कि जैन लोग विना नियमों के शीघ्र हल्ला गुल्ला कर के अपना पीछा छुड़ाना चाहते थे) इसके पश्चात् इस उक्त पत्र का आर्य्यों की ओर से उत्तर दिया गया—

श्रीमज्जैनमतानुयायिनः

पूर्वमप्यस्माभिरलेखि नियमनिर्णयमन्तरा नैकान्ततस्तत्र भवन्तो वक्तुमर्हन्ति यन्नियतसमयद्वयमतिक्रान्तमिति यदि नियमपत्रं स्वीकृत्य तत्र हस्ताक्षराणि कृत्वा ब्रूयुस्तदा तु प्रमाणीकृतं स्यात् । यदि भवन्तः शास्त्रार्थं कर्त्तुमिच्छन्ति तर्हि सद्यो नियमान् स्वीकृत्य हस्ताक्षराणि कृत्वा प्रेरयन्तु वयं चेदानीमेव शास्त्रार्थं कर्त्तुं सन्नद्धाः । यदि नियमानन्तरेण कर्त्तुमिच्छन्ति तर्हि ज्ञायते न शास्त्रार्थं चिकीर्षन्तीति। अस्माभिश्च यत्पत्रं प्रेरितं तस्योत्तरं किमपि न दत्तं तदिदानीं सद्योदातव्यमिति।

हस्ताक्षराणि—

प्र० चै० शु० ३ सं० १९४५ गङ्गारामवर्म्मणः फिरोजाबादस्थार्यसमाजामात्यस्य

भाषार्थ—पाहिले भी हमने लिखा था (कि सब से पाहिले नियम स्थिर करना चाहिये तब समय नियत किया जावे) नियमों का निश्चय किये विना एक अपनी ओर से आप नहीं कह सकते कि तुमने दो समय टाल दिये, ऐसे तो हम भी कह सकते हैं कि तुमने हमारे लिखे नियमों को टाला कुछ उत्तर नहीं दिया इससे तुम्हारा पराजय हुआ । यदि आप नियमपत्रों को स्वीकार कर हस्ताक्षर करके भेज देते तो हमारे न आने का उल्हाना मान भी लिया जाता । यदि आप शास्त्रार्थ करना वस्तुत: अन्त:करण से चाहते हैं तो शीघ्र नियमों को स्वीकार करके हस्ताक्षर कर भेजिये और हम लोग इसी समय शास्त्रार्थ करने को तैयार हैं। यदि आप नियमों के विना ही हल्ला गुल्ला किया चाहते हो तो ज्ञात होता है कि शास्त्रार्थ करने की इच्छा भीतर से नहीं है । हम लोगों ने जो पत्र भेजा था उसका उत्तर आपने कुछ नहीं दिया सो उत्तर शीघ्र दीजिये ॥

यह उक्त पत्र जब भेजा गया तब इसपर जैनियों ने कुछ उत्तर नहीं दिया, उनकी ऐसी लीला देखकर सामाजिक पुरुषों ने वस्ती के भद्रपुरुषों को बुलाकर सेठजी के पास भेजा कि यदि आप लोगों को शास्त्रार्थ करना है तो नियमों को स्वीकार कर लीजिये प्रयोजन यह था कि हम लोग जो नियमपूर्वक शास्त्रार्थ करना चाहते हैं उनको मध्यस्थ होकर देख लीजिये कि वे नियम दोनों पक्ष की ओर एकसा सम्बन्ध रखते हैं वा हमारा कुछ स्वार्थ है ? इसपर नागरिक मध्यस्थ लोगों ने हमारी उनकी बातें सुन के और नियमादि देखकर सेठ फूलचन्दजी और अन्य जैनियों के पास जाकर कहा कि

आर्य्य लोग निष्पक्षपात होके नियमपूर्वक शास्त्रार्थ करना चाहते हैं आप लोग स्वीकार क्यों नहीं करते, इस पर जैन लोगों ने अनेक जगड्वाल की बातें कहीं जिससे शास्त्रार्थ के होने की कोई आशा न जान पड़ी और उन नागरिक भद्रजनों को विश्वास हो गया कि जैन लोग शास्त्रार्थ करने से हटते हैं। ऐसा हाल देख के उन लोगो ने आर्य्यसमाज की उपस्थित सभा में आके स्वयमेव उच्चस्वर से कहा कि हमको ठीक निश्चय होगया कि आर्य्यों के सामने जैन लोग शास्त्रार्थ नहीं कर सकते, किन्तु टालाटूली करते हैं, हम सब के सामने लिख सकते हैं कि आर्यों का जय और जैनों का पराजय हुआ। इस पर आर्य्यसमाज के लोगों ने उन सत्पुरुषों से एक पत्र लिखा के हस्ताक्षर करा लिये, वह पत्र यह है:—

हम सत्य परमात्मा को जानकर कहते हैं कि मैं आर्यों की तरफ़ से जैनियों के पास गया मैंने शास्त्रार्थ करने में जैनियों को इनकार पाया, हस्ताक्षर लक्ष्मीचन्द गुप्त॥

ह० गुलजारीलाल

ह० रघुवरदयाल

और जितने आर्य्यजन एकत्रित हुए थे सबको विश्वास होगया कि अब शास्त्रार्थ नहीं होगा कल अपने २ घर चलेंगे। यह सब समाचार ता० १५ मार्च को हुआ इसी रात्रि के १२ बजे तक समाप्त हुआ सब लोग सो गये।

ता० १६ मार्च ८८ ई० को प्रातःकाल आर्य्य लोग नित्यकृत्य शौच संध्यादि करके आये तबतक शहर में हल्ला मच गया कि जैन लोग शास्त्रार्थ करने से हट गये बहुतेरे लोगो ने तो जैन सेठजी से जा २ कर कहा भी कि यह तो सहज में ही तुम पराजय करा बैठे तब तो सेठजी को बड़ा विचार पड़ा, इधर आर्य्यसमाज की ओर से भी दो एक पुरुष गये और सेठजी से कहा कि अब भी शास्त्रार्थ करावें तो ठीक २ निश्चय कीजिये नहीं तो हमारे पं० आज अपने २ स्थान को जावेंगे। इस पर सेठजी ने कहा कि हमारे अनुमतिकर्त्ता मंजूलाल प्यारेलालजी आजावें तब सलाह करके उत्तर देवें पश्चात् सामाजिक जन चले आये, इसके पश्चात् सेठजी ने अपना उपहास जान शहर के दो एक मध्यस्थ पुरुष समाज में भेजे और उन्होंने कहा कि जैनी लोग शास्त्रार्थ करना चाहते हैं और विशेष कर मध्यस्थ नागरिक लोगों की सम्मति हुई कि जैनियों की ओर से सेठ फूलचन्दजी और आर्यों की ओर से पं० भीमसेन शर्माजी दोनों महाशय जैनपाठशाला में बैठकर नियमों को निश्चय कर लेवें और उनको दोनों पक्षवाले स्वीकार करें, जैन लोगों

ने भी यह स्वीकार कर लिया। सब की सम्मति से पं० भीमसेन शर्म्मा और चतुर्वेदी कमलापतिजी सभापति जैनपाठशाला में गये और सेठ फूलचन्दजी वहां इसीलिये जाकर बैठे थे। वहां पहुंच कर दोनों की सम्मति से विशेष कर सेठ फूलचन्दजी की सम्मति से नियम जो पहिले लिखे हुए थे उन्हों को काट वढ़ा के ठीक किया और यह ठहरा कि इन नियमों की शुद्धप्रति कराली जावे सभा के आरम्भ में पांचों प्रबन्धकर्त्ताओं के हस्ताक्षर भी हो जावें इस प्रकार बातें चीतें होते २ दश बज गये थे और वारह वजे से चार बजे तक शास्त्रार्थ ठहरा था, इसलिये उसी समय नकल होकर हस्ताक्षर नही हो सकते थे और शास्त्रार्थकर्त्ताओं को भोजन भी करने थे। पश्चात् उन नियमों की शुद्ध नकल कराई गई और सब ने भोजन किये तबतक शास्त्रार्थ का समय आगया॥ मनुष्यों को शा० में जाने के लिये टिकट वँट गये थे टिकट सेठजी की ओर से बांटे गये थे उन नियमों को लेकर ठीक वारह वजे दिन को आर्य्य लोग जैनपाठशाला में पहुंचे और जैन लोग भी आये कोतवाल साहब कितने ही यमदूतों के साथ प्रबन्धार्थ आये जब सब लोग यथावस्थित वैठ गये तब यह प्रस्ताव आर्य्यों की ओर से हुआ कि जो नियम पं० भीमसेन शर्मा और सेठ फूलचन्दजी ने नियत किये हैं वे सभा में सुना दिये जावें तब इन नियमों के अनुसार कार्य होवे इस पर सभा की आज्ञा हुई कि नियम सुना दिये जावें, वे नियम ये हैं:—

(१) सभाप्रबन्ध के लिये पांच पुरुष प्रबन्धकर्त्ता नियत हुए, आर्य्यों की ओर से चौवे कमलापतिजी और पं० गंगाधर त्रिपाठीजी, जैनों की ओर से लाला मंजूलालजी और लाला प्यारेलालजी और उभय पक्ष की ओर से एक चौवे ज्वालाप्रसादजी सभापति, इन पांचों महाशयो को निम्नलिखित नियमानुसार सभा का प्रबन्ध करना होगा।

(२) सभा में वे महाशय जायंगे कि जिनके पास टिकट होगा पर वे सभास्थ पुरुष दोसौ से अधिक न होंगे।

(३) प्रश्नोत्तर दोनों ओर से बराबर ही होने चाहियें प्रश्न के लिये पांच मिनट और उत्तर देने के लिये २० मिनट समय नियत किया है और जबतक एक प्रश्न पर पूरी वार्त्ता न हो जाय तब तक दूसरा विषय न छेड़ा जाय।

(४) उभय पक्ष की ओर से दो २ पण्डित शास्त्रार्थ में उपस्थित होकर वार्त्ता करें अर्थात् आर्य्यों की ओर से पं० देवदत्तजी और पं० भीमसेनजी और जैनों

से पं० छेदालालजी और पं० पन्नालालजी इनसे भिन्न कोई न बोल सकेगा।

(५) यह शास्त्रार्थ अक्षर २ यथावत् तीन प्रतियों में लिखा जायगा दो प्रति उभयपक्ष की ओर से, तीसरी सभापति की ओर से और इन तीनों प्रतियों पर उभयपक्ष के पं० और सभापति के हस्ताक्षर होने चाहियें।

(६) शास्त्रार्थ दोनों पक्षों की समत्यनुसार संस्कृत ही में होगा, परन्तु उसी जगह संस्कृत का अनुवाद करके नागरी भाषा में सब को सुना देना चाहिये।

(७) शब्द की शुद्धाऽशुद्धि पर कुछ विशेष वार्त्ता वा विचार न किया जायगा सज्जन लोग छप जाने पर अपने आप ही जान लेंगे।

(८) उभयपक्ष के शास्त्रार्थकर्त्ता अपने २ ही मत के माननेवाले हों अर्थात् अन्यमतावलम्बी पुरुष अन्य की ओर से न बोलेंगे।

(९) उभयपक्ष वाले अपने २ वर्ग में १० मिनट से अधिक सम्मति न कर सकेंगे।

(१०) शास्त्रार्थ जैनों की इच्छानुसार दिन में वा रात्रि में हो पर चारघंटे से अधिक प्रतिदिन न होगा, समय की पूर्त्ति पर उठने में जयाजय न समझना चाहिये।

(११) ता० २० मार्च को शास्त्रार्थ बन्द रहेगा, कदापि साहब कलेक्टर बहादुर आज्ञा दें तो हो सकेगा।

ये सब नियम सुनाये गये इस पर जैन लोगों ने अनेक शङ्का पैदा की और कहा कि ये नियम हमारे साथ नहीं नियत हुए, इस प्रकार परस्पर बहुत से झगड़े होते २ छठे नियम पर अधिक विवाद हुआ इसका कारण यह था कि आर्य लोग कहते थे शास्त्रार्थ संस्कृत में हो और जैन लोग भाषा मे होने का हठ करते थे। आर्य लोग संस्कृत मे होने पर इसलिये वल देते थे कि जैन लोगो ने प्रथम ही पत्र मे संस्कृत में होने की प्रतिज्ञा की थी उस समय जैनों ने समझा था कि हम अपनी ओर से पं० मिहिरचन्द और जियालाल (जिनको कुछ धन देकर लाये थे) से शास्त्रार्थ करावेंगे वस्तुतः जैनियो मे कुछ भी संस्कृत विद्या का वल नहीं था परन्तु उनमें (निरस्तपादपे देशे एरण्डोपि द्रुमायते) जैसे वृक्षरहित देश में एरण्ड का वृक्ष भी वड़ा वृक्ष मालूम होता है वैसे छेदालाल पन्नालाल साधारण विद्यार्थियो के तुल्य कुछ २ संस्कृत जानते थे सो सेठ फूलचन्दजी ने भी इनके ऊपर शास्त्रार्थ का आरम्भ नहीं किया था किन्तु पंडित मिहिरचन्द और जियालाल (भाड़े के टट्टुओं) के भरोसे शास्त्रार्थ का वल वांधा था और इसी वल से संस्कृत में करने की प्रतिज्ञा लिखाई थी पर जव नियम स्थिर किये गये तव यह

निश्चय होगया कि अन्य पक्ष का पं० अन्य की ओर से मुख्त्यार बन के शास्त्रार्थ न कर सकेगा अर्थात् जो २ पं० जिस २ की ओर से नियत हो वह उस मत को यथावत् मानता हो इस नियम से भाड़े के पंडित तो निकल गये जब जैनियों का भाड़े का बल टूट गया तब संस्कृत में शास्त्रार्थ करने से इनकार करते थे और ऊपर से प्रसिद्ध करते थे कि सब लोग कुछ नहीं समझेंगे इससे भाषा में होवे। इसका उत्तर आर्य लोग देते थे कि संस्कृत की भाषा करके सभा में समझा दी जाया करेगी और यह भी बल देते थे कि तुम लोगो ने प्रथम प्रतिज्ञा की थी इसलिये संस्कृत में ही होना चाहिये, इस प्रकार नियमों पर झगड़ा होते २ जैनियों ने एक मध्यस्थ का झगड़ा छेड़ दिया इसपर दोनों ओर से बहुत विवाद होता रहा। जैनियों की ओर से पं० छेदालाल ने कहा कि स्वामी विशुद्धानन्दजी, श्रीधरजी तथा जो २ पं० आर्य्यसमाजी और जैनियों के मत में नहीं उनमें से चाहे जो पं० मध्यस्थ कर लिये जावें जो शास्त्रार्थ लिखापढ़ी द्वारा हो सो उनके पास भेज दिया जावे जिसके पक्ष को वे अच्छा बतलावें उसका पक्ष ठीक समझा जावे। आर्य्यों की ओर से पं० भीमसेनशर्मा ने कहा कि प्रथम ऐसा पुरुष मिलना ही दुर्लभ है कि जो सर्वथा निष्पक्ष और निर्लोभ होकर सत्य कहे, बहुधा पं० लोग थोड़े २ धन के लोभ से ईसाइयों तक को अपने मत के खण्डनविषयक पुस्तक बना देते हैं (जैसे पं० मिहिरचन्द्रादि यद्यपि जैनमत को मानते नहीं तथापि धनलोभ से नास्तिको की ओर से वेद का खण्डन करने आये हैं) तो किस का विश्वास किया जावे ? और कदाचित् कोई निष्पक्ष पुरुष मिल भी जावे और वह धर्मपूर्वक किसी एक पक्ष का पराजय कह देवे तो क्या उस समुदाय के लोग सब उस पक्षको छोड़ देवेगे ?, मेरी समझ में जैन लोग तो ऐसे हठीले हैं कि उन के तीर्थंकर पार्श्वनाथ साक्षात् आकर जैन पक्ष को पराजित कहे तो भी न मानेंगे। अर्थात् इस मध्यस्थ के झगड़े से यही प्रयोजन होगा कि हज़ार पांचसौ रुपये खर्च करके अपने पक्ष के विजय का डंका पं० रूप बाजीगरों से बजवा देगे। इस पर बहुत काल तक विवाद होता रहा और शास्त्रार्थ का आरम्भ न हुआ। आर्य लोग कहते थे कि पहिले नियम भले ही मत मानो किन्तु अब पंचों की सम्मति से और नये नियम बना लिये जावें तथा मध्यस्थ कोई नही करना चाहिये तथा बिना नियमों के हम शास्त्रार्थ न करेंगे।

जैन लोगो का कथन था कि हम नियम एक भी न मानेंगे और मध्यस्थ कोई

अवश्य होवे। ऐसे होते २॥ (अढ़ाई) घंटे बीत गये सभा के सब लोग व्याकुल हो-गये और मालूम हुआ कि सभा उठना चाहती है तब कोतवाल साहब ने कहा कि आज जिस पक्ष के लोग (चाहे किसी कारण से) शास्त्रार्थ न करेंगे उन्हीं का पराजय समझा जायगा। यद्यपि आर्य्यसामाजिक लोगो का विचार नहीं था कि विना नियमों के ऊटपटांग शास्त्रार्थ किया जावे (अनुमान से ज्ञात होता है कि जैनी लोगों ने यह सम्मति करली थी कि आर्य लोग विना नियमों के शास्त्रार्थ नहीं करेंगे इसलिये हम नियमों को तोड़ देवें और कह देवेंगे कि आर्य्य लोगों ने शास्त्रार्थ नहीं किया इससे उनका पराजय होगया) तो भी अनिष्ट परिणाम देखकर विचार किया कि हम अब विना ही नियमो के शास्त्रार्थ करेंगे, परन्तु कोत-वाल साहब ने उर्दू में शास्त्रार्थकर्त्ता दोनो पक्ष के पण्डितों के नाम लिख लिये थे। इसके पश्चात् दोनों पक्ष वालों का विचार हुआ कि शास्त्रार्थ होना चाहिये तब (अहमहमिका) का झगड़ा हुआ कि पहिले कौन प्रश्न करे सभासम्मति से यह निश्चय हो गया कि दोनो पक्ष वाले साथ ही अपना २ प्रश्न लिख के अपने २ प्रतिपक्षियों को देवें इसके अनुसार शास्त्रार्थ का प्रारम्भ हुआ।

शास्त्रार्थ का प्रारम्भ प्रथम दिन ता० १६ मार्च सन् १८८८ ई० प्रथमपत्र जैनियों का ॥

प्रथम प्रश्न—भोविद्वज्जनवर्य्याः जगद्वृत्तिपदार्थानां प्रमेयत्वं सर्वसाधारणं॥ प्रमेयसिद्धेः प्रमाणाधीनत्वेन॥ प्रथमं प्रमाणनिर्णयोऽपेक्षितः अतः तत्स्वरूपं किं?॥ कति च भेदाः कश्च तद्विषयः किञ्च तत्फलं तत्प्रामाण्यं स्वतः परतो वेत्यस्माकम्प्रश्नः॥

ह० छेदालालजैनधर्मिणः

ह० पन्नालालजैनमतानुयायिनः ।

भाषानुवाद—भो विद्वानो में श्रेष्ठजनो ! जगत् मे वर्त्तमान पदार्थों का प्रमेय होना सर्वसाधारण (मिहिरचन्दकृत भाषानुवाद "पदार्थों को प्रमेय मानते हैं" ठीक नहीं है क्योंकि ज्ञान विषयक कोई क्रिया संस्कृत में नहीं है पदार्थ शब्द षष्ठ्यन्त है, उसको द्वितीयान्त करना ठीक नही केवल अस्ति-सामान्य क्रिया का अध्याहार हो सकता है) और उस प्रमेय की सिद्धि प्रमाण के आधीन होने से पहिले प्रमाण का निश्चय अपेक्षित है, इसलिये उसका स्वरूप क्या है। उसके भेद कितने हैं, उसका विषय क्या है और उस प्रमाण का फल क्या है। उसका स्वतः प्रामाण्य वा परतःप्रामाण्य है यह हमारा प्रश्न है॥

इसके साथ ही आर्यों की ओर से प्रथम विचारणीय प्रश्न दिये गये ।

प्रथमपत्र आर्यों का ॥

सुखमार्गान्वेषणार्था सर्वस्य प्राणभृतः प्रवृत्तिस्तत्प्राप्तिर्जैनसम्प्रदायात्कथं सम्भवति । जिनशब्दस्य कः पदार्थो जैनशब्दस्य चानयोश्च कः सम्बन्धः । जिनशब्दवाच्यो यः कश्चिदभिमतोऽस्ति स नित्य आहोस्विदनित्यः । जिन-जैनपदार्थयोर्लक्षणं स्वरूपं च वक्तव्यमिति । तत्पूजनं सफलं विपरीतं वा यदि सफलं तर्हि किं फलकम् ॥

ह० भीमसेनशर्म्मणः
ह० देवदत्तशर्म्मणः

भाषानुवाद—सुख का मार्ग खोजने के लिये सब प्राणी प्रवृत्त हो रहे हैं उस सुख के मार्ग की प्राप्ति जैन संप्रदाय से कैसे हो सकती है । जिन और जैन शब्द से किस वस्तु का ग्रहण होता है अर्थात् जिन जैन का वाच्यार्थ क्या है और जिन तथा जैन का परस्पर (पितापुत्रादि) क्या सम्बन्ध है । जिन शब्दवाच्य जो कोई पदार्थ माना है वह नित्य है वा अनित्य ? जिन जैन इन दोनों पदों और इनके वाच्य अर्थों के लक्षण और स्वरूप कहो । उस जिनका पूजन सफल है वा निष्फल ?, यदि सफल है तो उसका क्या फल है ? ।

विशेष—यह पत्र लिखकर जैनियो को दिया गया और इससे पहिला जैनियों का पत्र आर्यों के पास आया । सब महाशयो को विचारना चाहिये कि आर्य्यों के पत्र का जो उत्तर जैनियों ने दिया है वह आर्य्यों के प्रश्न से क्या सम्बन्ध रखता है ? और साथ ही इस पर भी ध्यान रक्खे कि जैनियों के पत्र का जो आर्य्यों ने उत्तर दिया है वह प्रश्न से कितना सम्बन्ध रखता है ? ॥

आर्य्यों के प्रथम प्रश्न के उत्तर में जैनियो का दूसरा पत्र ॥

मानाधीनामेयसिद्धिरिति न्यायेन युष्मदुक्तपदार्थानां प्रमेयरूपत्वात्प्रथमं प्रमाणनिर्णयः आवश्यकः । तन्निर्णयाभावे मेयानां निर्णयो दुर्घटः अतएव ममोक्तपूर्वपक्षस्य आदौ परामर्शो युक्तः ॥

ह० छेदालाल
ह० पन्नालाल

भाषानुवाद—प्रमेय की सिद्धि प्रमाण के आधीन है इस न्याय से तुम्हारे कहे (जिनजैनादि) पदार्थों के प्रमेयरूप होने से पहिले प्रमाण का निर्णय होना आवश्यक है क्योंकि प्रमाण निश्चय के विना प्रमेय का निश्चय होना दुर्घट है, इससे हमारे कहे पूर्वपक्ष का पहिले विचार करना चाहिये। इस पत्र में (ममोक्तपूर्वपक्षस्य) यह बड़ीभारी अशुद्धि है, विद्वानों को इनका पाण्डित्य अच्छे प्रकार ज्ञात हो जायगा। इन पहिले दो पत्रो में बड़ी २ अशुद्धि कम हैं क्योंकि यह संस्कृत पण्डितों (मिहिरचन्द्रादि) ने पहिले ही लिखा दिया था कि तुम यह प्रश्न करना सो छेदालाल जैन ने सभा के बीच वह पर्चा निकाल के नकल कर दिया था और कुछ भूले तब मिहिरचन्द्र को पूछने लगे तब आर्य्यों ने कहा कि यह शास्त्रार्थ आर्य्यों और जैनियों का है यदि अन्य कोई पण्डित जैनियो को सहायता देवे तो उचित होगा कि प्रथम यज्ञोपवीत उतार के जैनी बन जावे। इस पर मिहिरचन्द्र चिड़ कर बोले कि मै जैनियों की ओर नही किन्तु दोनो को पतित समझता हूं। परन्तु यह विचार न किया कि धर्मशास्त्र के अनुसार (संवत्सरेण पतति पतितेन सहाचरन्) वैदिकधर्म से पतित जैनियो के साथ वर्षों से आचरण करने वा उनका धान्य खाने से मैं भी पतित होगया हूं। यदि धर्मशास्त्रों को विचारते और अपने को पतित समझ लेते तो क्यो दूसरों को पतित कहते ? । एक चोर दूसरे चोर को चोर नहीं कह सकता, चोर चोर मौसियाते भाई होते हैं। इससे मिहिरचन्द्र का अभिप्राय यह था कि मैं किसी की ओर नहीं दोनो को पतित समझता हूं, परन्तु रुपये की ओर हूं क्योंकि रुपया पतित नही है उसीसे प्रयोजन है। अब आर्य्यों ने जैनियों के प्रथम पत्र का जो उत्तर दिया है उसको ध्यान देकर प्रश्न के अक्षरों से मिलाइये।

जैनियों के प्रथमपत्र के उत्तर में आर्य्यों का दूसरा पत्र॥

अपद न प्रयुञ्जीत इति शब्दशास्त्रनियमात्, अपदत्वं च विभक्तिरहितत्वं सुप्तिङन्तं पदमिति शासनात् प्रथमप्रश्न इति लेखोऽपभाषणम्। यदि जगद्वृत्तिपदार्थानां सर्वसाधारणं प्रमेयत्वं तर्हि प्रमाणस्यापि सर्वसाधारणभावेन प्रमेयत्वात्प्रमाणविषयकः प्रश्नः प्रमेयान्तर्गतत्वात्साध्यसमहेत्वाभासः। अस्य च प्रमाणविषयकप्रश्नस्य जगद्वृत्तिपदार्थान्तर्गतत्वाज्ज्ञेयत्वसिद्धिरिति ज्ञातत्वादङ्गीकृतमेव प्रमाणपूर्वकव्यवहारकरणात्। अतश्च तद्विषयकः प्रश्न. सर्वसाधारणप्रमे-

यत्वे सिद्धे व्यर्थएव । तद्भेदाश्च यथाशास्त्रं द्वौ त्रयश्चत्वारोऽष्टौ वा प्रमाणफलं च व्यवहारपरमार्थयोः सिद्धिः, तत्प्रामाण्यं स्वतः परतश्च ।

ह० भीमसेनशर्मणः

ह० देवदत्तशर्मणः

भाषानुवाद—व्याकरण शास्त्र का यह नियम है कि जिसमें विभक्ति नहीं ऐसे अपद शब्द का प्रयोग न करे पद उसको कहते हैं जिसके अन्त में सुप् और तिङ् हो, इस कारण "प्रथम प्रश्न" यह शब्द व्याकरण से विरुद्ध होने से "प्रथमग्रासे मक्षिकापातः" के तुल्य लिखा गया है क्या इसी पण्डित्य के आश्रय से जैनी लोग संस्कृत मे शास्त्रार्थ करना चाहते थे ? । इस पर पं० मिहिरचन्द्र लिखते हैं "एक विसर्गमात्र की अशुद्धि है" क्या व्याकरण में विसर्गमात्र की अशुद्धि कम होती है ? । कोई पण्डित किसी विद्यार्थी से बोले कि हम तुम्हारी परीच्छा करेंगे विद्यार्थी ने कहा—महाराज मेरी परीक्षा तो आप करेंहींगे पर आप की परीक्षा परीच्छा शब्द से पहिले ही होगई, वही वृत्तान्त पं० मिहिरचन्द्र का हुआ कि जिनको विसर्ग, व्यवहार, विषय आदि शब्दों मे यह भी नहीं मालूम कि इनमें कौन वकार लिखना चाहिये इससे इनकी भी परीक्षा होगई और सब को ज्ञात हो जावेगा । क्या इसी पाण्डित्य के भरोसे अपने को अर्थशास्त्रज्ञ होने का दम्भ करते हैं अस्तु, यदि जगत् में वर्त्तमान सब पदार्थों को प्रमेयत्व है तो क्या जगत् मे वर्त्तमान सब पदार्थों में प्रमाण नहीं समझा जावेगा ?, जब जगत् के सब पदार्थों मे प्रमाण भी एक पदार्थ होने से पदार्थत्व सामान्य से प्रमाण भी प्रमेयरूप में आगया तो उसके भी प्रमेय होजाने से प्रमाण रहा ही नहीं फिर उसका प्रश्न करना कभी ठीक नहीं है । जब प्रमाण को साध्य पक्ष मे लेकर उसको निर्णय किया चाहते हो तो उसके निर्णय करने में जो कुछ प्रमाण कहोगे वह सब साध्य पक्ष में आजाने से प्रमेय हो जायगा क्योंकि तुम सर्वसाधारण पदार्थों का प्रमेय कह चुके हो तो तुम्हारा प्रमाण विषयक प्रश्न भी सब पदार्थों के अन्तर्गत होने से जानने योग्य है । इससे तुम्हारा प्रश्न जाना हुआ नहीं रहा अर्थात् तुम्हारे प्रश्न को यदि तुम सब पदार्थों में मानते हो तो विचारणीय पक्ष में आगया । यदि कहो कि हमको अपने प्रमाण विषयक प्रश्न में सन्देह नहीं तो अपने प्रश्न को प्रमाणरूप मान लेने से तुमने प्रमाण को निश्चित समझ लिया फिर प्रमाण मे सन्देह न रहने से प्रमाणविषयक प्रश्न नहीं बनता । यदि तुम को प्रश्न में भी सन्देह होता तो प्रश्न ही न करसकते अर्थात् संसार में जो कुछ व्यवहार होता

है वह सब प्रमाणपूर्वक है जब भोजन करते हैं तब भी नेत्रादि से निश्चय कर लेते हैं कि यह अन्न है इससे क्षुधा की निवृत्ति होकर सुख होगा इसलिये भोजन करें, यदि सन्देह हो कि यह हमारे भोजन योग्य अन्न है वा नहीं तो भोजन करना भी न बने। मनुष्य जिसको नेत्रादि प्रमाणों से अपने सुख का साधन समझ लेता है उसको ग्रहण करता और जिसको दुःख का हेतु जानता है उससे सदा बचा करता है। इत्यादि सब व्यवहार प्रमाणपूर्वक होता है तो तुम्हारा प्रश्न भी प्रमाणपूर्वक होने से तुमने प्रमाण को जानलिया फिर प्रमाणविषयक प्रश्न नहीं बन सकता। यद्यपि प्रश्न नहीं बनता तथापि उत्तर देते हैं कि पृथक् २ शास्त्रकारों की शैली के अनुसार प्रमाण के भेद दो, तीन, चार और आठ हैं। प्रमाण फल व्यवहार परमार्थ की सिद्धि है उस प्रमाण का निश्चय स्वतः उसी से और परतः अन्य से भी होता है ॥

इस आर्य्यों के द्वितीयपत्र के उत्तर में

जैनियों का तीसरा पत्र ॥

जगद्वृत्तिपदार्थानां सर्वसाधारणं प्रमेयत्वं तर्हि प्रमाणस्यापि सर्वसाधारणभावेन प्रमेयत्वात्। प्रमाणविषयकः प्रश्नः प्रमेयान्तर्गतत्वात्साध्यसमहेत्वाभासैरिति भवद्भिरपरामर्शत्वेनोल्लेखोयं कृतः कुतः प्रमाणस्य तु विषयीरूपत्वात् प्रमेयाणां विषयरूपत्वाच्च प्रमाणरूपत्वेन प्रमाणस्य न प्रमेयत्वं अन्यथा लक्षणस्यापि लक्षाक्रान्तत्वेन दूषणगणबाणप्रहारपातात् किञ्चप्रमाणपूर्वकव्यवहारकरणात् तद्विषयकः प्रश्नः सर्वसाधारणप्रमेयत्वे सिद्धे व्यर्थएव। एतदप्ययुक्तं कुतः यदि अस्मत्स्वीकृतं मतं प्रमाणं तर्हि भवन्तोप्यङ्गीकुर्वन्तु नोचेत्समायातो विचारः सोपिप्रमाणाधीनः अतः प्रमाणविषयकः प्रश्नः सार्थिकः किञ्च तद्भेदाश्च यथाशास्त्रं द्वौ त्रयश्चत्वारोऽष्टौ व इदमप्यविशेषेण लेखनं कस्मिन्शास्त्रे इमे भेदाः केन प्रकारेण उद्दिष्ठाः अपि च प्रमाणविषयोनोक्तः किं तर्हि अस्तितया नवेति स्पष्टतयोल्लेखनीयं। प्रमाणफलं च व्यवहारपरमार्थयोः सिद्धिः इत्यनेनापि प्राप्तः प्रमाणनिर्णयः तत्प्रामाण्यं स्वतः परतश्च इत्यनेनानैकांतको हेत्वाभासः निर्पेक्षतयोक्तत्वात् ॥

ह० छेदालालजैनधर्मिणः

ह० पन्नालाल जैनमतानुयायिनः

भाषानुवाद—आपने यह कहा कि जगत् में वर्त्तमान पदार्थों को साधारण रीति से प्रमेयत्व है तो प्रमाण भी सब में आगया इससे प्रमेय हुआ तो प्रमाणविषयक प्रश्न

प्रमेयान्तर्गत होने से साध्यसमहेत्वाभास हुआ यह आप का लिखना विना विचारे है क्योंकि प्रमाण विषयिरूप और प्रमेय विषयरूप है प्रमाणरूप से प्रमाण को प्रमेयत्व नहीं अन्यथा लक्षण को भी लक्ष्यत्व होने से अनेक दूषण आजायंगे और यह भी आपका कहना अयुक्त है कि प्रमाणपूर्वक व्यवहार के करने से प्रमाणविषयक प्रश्न सर्वसाधारण प्रमेय होने से व्यर्थ है क्योंकि जो हमारे स्वीकृतमत को प्रमाण मानते हो तो अङ्गीकार करो जो नहीं मानते हो तो विचार करने का अवसर आया इससे प्रमाणविषयक हमारा प्रश्न सार्थक है और उसके भेद शास्त्रके अनुसार दो२, तीन३, चार ४ वा आठ हैं यह लेख भी विशेषरहित संदेहरूप है क्योंकि यह नहीं लिखा कि किन शास्त्रों में यह भेद हैं और किस प्रकार से कहे हैं और प्रमाण विषय नहीं कहा वह है या नहीं, स्पष्ट कहो और प्रमाण का फल व्यवहार परमार्थ की सिद्धि कहा सो इस आपके कथन से भी प्रमाण का निर्णय प्राप्त हुआ और उसका प्रामाण्य स्वतः परतः होता है इस आपकी उक्ति को निरपेक्ष होने से अनैकान्तिक अर्थात् व्यभिचारी हेत्वाभास की नाईं स्वतः परतः की साधकता नहीं हो सकती ।

विशेष—जैनियों के इस पत्र में कई अशुद्धियां हैं, जैसे—१—हेत्वाभासरिति। २—विषयंरूपत्वात् । ३—लक्षाक्रान्तत्वेन। ४—सार्थिकः। ५—उद्दिष्ठाः। ६—नैकान्तकः। ७—भवंतोऽप्यंगीकुर्वेतु । इन तीन शब्दों मे तीन अशुद्धियां हैं । यदि कोई लिखने में अक्षर छूट जाता है तो उससे पण्डिताई में हानि नहीं समझी जाती सो ऐसी अशुद्धि यहां नहीं गिनाई हैं । इन उक्त अशुद्धियों के अनन्तर इनके पत्र में अन्य भी अशुद्धियां हैं जिनसे जैन पण्डितों की पण्डिताई प्रकाशित हो जावेगी ॥

इसके आगे जैनियों के द्वितियपत्र के उत्तर में

आर्यों का तृतीय पत्र ॥

सर्वव्यवहाराणां प्रमाणपूर्वकत्वमप्रमाणपूर्वकत्वं वा । यदि प्रमाणपूर्वकत्वं तर्हि भवत्प्रश्नस्यापि सर्वव्यवहारान्तर्गतत्वात्संशयाभावेनानर्थकः प्रश्नः। यदि चाप्रमाणपूर्वकत्वं तर्हि भवत्प्रश्नस्यायोग्यत्वम् । यद्यस्मदुक्तपदार्थानां मेयत्वं भवद्भिः स्वीक्रियते तर्हि जिनपदस्य तदर्थस्य च साध्यत्वाद्भवन्मतमूलमेव साध्यं न तु सिद्धमित्यतो भवदनुमतौ सर्वस्य साध्यत्वात् प्रामाणाभावेन प्रमेयाभावः ।

ह० भीमसेनशर्मणः
ह० देवदत्तशर्मणः

भाषानुवाद—सब व्यवहार प्रमाणपूर्वक होते हैं वा अप्रमाणपूर्वक ? अर्थात् सोच समझ के मनुष्य कार्य्य करने में प्रवृत्त होते हैं वा अन्धाधुन्ध उन्मत्त के समान। यदि कहो कि प्रमाण से व्यवहार होते हैं तो आपका प्रश्न भी सब व्यवहारों में होने से प्रमाणपूर्वक हुआ अर्थात् आपने अपने प्रश्न को प्रामाणिक माना तो तुमको प्रमाण का बोध होगया अर्थात् प्रमाण का बोध था तब ही तुम प्रश्न कर सके तो प्रमाण में संदेह न होने से तुम्हारा प्रमाण विषय प्रश्न करना सर्वथा व्यर्थ हुआ। यदि कहो कि विना प्रमाण के व्यवहार होते हैं तो तुम्हारा प्रश्न भी अप्रमाणिक होने से अयोग्य है। और यदि हमारे प्रथमपत्र में लिखे जिन जैनादि पदार्थों को तुम प्रमेय अर्थात् विचारपक्ष में लानेयोग्य मानते हो तो जिनपद और उसके वाच्यार्थ के साध्य होने से तुम्हारे कथनानुसार ही तुम्हारे मत का मूल साध्य होगया किन्तु सिद्ध नहीं रहा इससे यह आया कि तुमको अपने जैनमत पर विश्वास नहीं यदि विश्वास होता तो उसको प्रामाणिक मानते जब प्रामाणिक मान लेते तो प्रमाणविषय में सन्देह न होने से प्रश्न क्यों करते जब तुमको अपने मत के प्रामाणिक होने का विश्वास नहीं तो अन्य मत पर कैसे विश्वास हो सकता है ?। इसलिये तुम्हारे मत में सभी साध्य होने से प्रमाण कोई वस्तु न रहा क्योंकि प्रमाण वही कहाता है कि जिससे विषय का निश्चय हो और जिस विषय को उस प्रमाण से निश्चय करें वह प्रमेय कहाता है सो जब प्रमाण ही न रहा तो प्रमेय का ठहरना भी दुस्तर है।

यह पहिले दिन ता० १६ मार्च का शास्त्रार्थ समाप्त हुआ सब अपने २ घर को चले गये। उसी दिन आर्य्यों को चिन्ता रही कि अब कल कब शास्त्रार्थ होगा उस का समय पहिले से नियत होना चाहिये परन्तु जैन लोगों को कुछ भी फिकिर न थी और पहिले दिन के शास्त्रार्थ से जैनियों को तथा अन्य श्रोताजनों को बलाबल भी ज्ञात होगया था इससे जैनियों की भीतरी इच्छा नहीं थी कि दूसरे दिन शास्त्रार्थ हो पर अपनी ओर से बन्द करने में भी प्रसिद्ध पराजय हुआ जाता था क्योंकि जैनियों के प्रतिपक्षी आठों प्रहर कटिबद्ध हो रहे थे इस कारण आर्यों की ओर से कई बार संदेशा जाने से जैनी लोगों को ता० १७ को शास्त्रार्थ स्वीकार करना पड़ा और ता० १७ को भी उसी समय से शास्त्रार्थ का आरम्भ हुआ। पर ता० १६ को आर्य्यों ने जो तीसरा पत्र अन्त में दिया था उसका उत्तर जैनियो को देना था और जैनियो के तृतीयपत्र का उत्तर आर्य्यों को देना था

४

आर्य्यों का पत्र जैन लेगये थे और जैनियों का पत्र आर्य लेगये थे और अपने २ घर विचारपूर्वक उत्तर लिखकर लाये जैनियों को उत्तर लिखने के लिये घर पर अन्य मतावलम्वी पं० लोगों की सहायता मिल गई जिससे अच्छे प्रकार लिखा ॥

द्वितीय दिन ता० १७ मार्च आर्य्यों के तृतीयपत्र के उत्तर में जैनियों का चौथा पत्र ॥

श्रीमद्भिः यदुक्तं सर्वव्यवहाराणां प्रमाणपूर्वकत्वमप्रमाणपूर्वकत्वं वेत्ययुक्तं । नायं नियमः सर्वव्यवहाराणां प्रमाणपूर्वकत्वमप्रमाणपूर्वकत्वं वा कस्मात् व्यवहाराणां वैलक्षण्यात् । प्रश्नस्यानर्थक्यन्तु वक्तुमशक्यं । येन व्यवहाराणां प्रमाणपूर्वकत्वं तत्प्रमाणं किमिति प्रश्नस्य सार्थक्यात् ॥ नास्माकं प्रमाणस्वरूपादौ संशयः । यूयं जानीथ नवेति पृच्छते। अस्मत्प्रश्नविषयस्य सर्वशास्त्रसंमतत्वेन नायोग्यत्वं । अस्मन्मतविषये भवज्जिज्ञासितपदार्थानां यथा मेयत्वं तथा सर्वेषां पदार्थमात्राणां मेयत्वमस्माभिरंगीक्रियते परन्तु यन्मेयं तत्साध्यमिति न व्याप्तेरभावात् इत्यनेन यथस्मदुक्तपदार्थानाम्मेयत्वं भवद्भिः स्वीक्रियते तर्हि जिनपदस्य तदर्थस्य च साध्यत्त्वाद्भवन्मतमूलमेव साध्यं नतु सिद्धमित्युक्तं तदपि निर्मूलं ॥ अपि च मेयं च किं प्रमाणाधीनमिति प्रश्नावकाशः ॥ अन्ततो गत्वा भवद्भिरपि प्रमाणाभावेन प्रमेयाभावः इति लेखकृद्भिः प्रमाणं स्वंगीकृतं परन्तु पृष्ठसविशेषप्रमाणस्वरूपादिकम् वक्तुमसमर्थाः इत्यस्माभिरवगतम् ।

ह० छेदालाल जैनधर्मिणः

ह० पन्नालाल जैनधर्मिणः

भाषानुवाद—आपने जो कहा कि सब व्यवहार प्रमाणपूर्वक हैं या अप्रमाणपूर्वक यह आपका कहना अयोग्य है क्योंकि यह नियम नहीं है कि सब व्यवहार प्रमाणपूर्वक ही होते है या अप्रमाणपूर्वक क्योंकि व्यवहार विलक्षण हैं अर्थात् कोई प्रमाण पूर्वक कोई अप्रमाणपूर्वक होते हैं तो और हमारे प्रश्न को तो अनर्थक आप नहीं कह सकते क्योंकि जिस व्यवहार को प्रमाणपूर्वकता है वह प्रमाण क्या, इससे हमारा प्रश्न सार्थक है और हमको तो प्रमाण के स्वरूपादि में संशय नहीं है, पूछते इसलिये हैं कि आप भी उसको जानते हैं या नहीं हमारे प्रश्न का विषय सम्पूर्ण शास्त्रों को सम्मत इससे अयोग्य नहीं है हमारे मत के विषय में जिन पदार्थों के जानने की आपकी इच्छा है वे जैसे प्रमेय हैं उसी रीति से हम सम्पूर्ण पदार्थों को

प्रमेय मानते हैं परन्तु जो मेय है वह साध्य अवश्य होता है यह नहीं कह सके क्योंकि व्याप्ति का अभाव है इसी लेख से आपने कहा कि जो हमारे कहे हुए पदार्थों को तुम प्रमेय मानते हो तो जिन पद और उसका अर्थ भी साध्य हुआ इससे तुम्हारे मत का मूल साध्य है सिद्ध नहीं यह आपका कहना भी निर्बल है और मेय किस प्रमाण के आधीन है इससे हमारे प्रश्न का अवकाश है और अन्त में आपने भी प्रमाण के विना प्रमेय का अभाव होता है यह लिख कर उस प्रमेय की सिद्धि का कारण तो प्रमाण को माना परन्तु हमारे पूछे हुए प्रमाण के पृथक् २ स्वरूप आदि को आप कहने को समर्थ नहीं यह हमने जान लिया।

विशेष—यह पत्र लिखकर लाये और जैनियों ने सभा के आरम्भ होते ही सब की सम्मति से सभा में सुनाया और कितनी ही बातें अपनी इच्छानुसार ऊपर से कहीं पीछे आर्य्यों की ओर से पण्डित देवदत्त शास्त्रीजी ने भी अपना लिखा उत्तर सुनाया और कुछ उस पत्र के सम्बन्ध में कहा इस पर छेदालाल जैन ने फिर खड़े होकर कहा इस पर भीमसेन शर्म्मा ने कहा, जैनियों को सभा के आरम्भ में कहने के लिये समय दिया गया इस पर तो जैनी प्रसन्न थे पर जब आर्य्य पण्डित बोल चुके तब फिर भी पीछे बोलना चाहें तब आर्य्य पण्डितों ने कहा कि तुम जितनी बार बोलोगे, उतनी बार हम तुम्हारे पीछे अवश्य बोलेंगे। अन्त में यह हुआ कि दूसरे दिन अन्त में आर्य्य पण्डितों ने उनके उत्तर देकर जैनमत की पोल खोलने का प्रारम्भ किया (जिसको प्रमाण प्रमेय का झगड़ा डाल के अपने मत की गोलमाल पोलपाल को दबाते थे कि हमारे मत पर विचार न चलनेपावे) तब तो जैनियों के मुख पर सफेदी आनेलगी इस दूसरे दिन के शास्त्रार्थ को जैन पण्डितों ने इस विचार से बोल चाल अर्थात् लिखा पढ़ी न होकर भाषा में बोलने में टाला था कि हमारे संस्कृत की अशुद्धियां सभा में प्रकट हो चुकीं फिर लिखेंगे तो और भी अशुद्धियां निकलने से विशेष धूर होगी इसलिये भाषा में बोलकर समय पूरा करें परन्तु आर्य्यों की इसमें भी चढ़ बनी अर्थात् प्रमाण विषय में यथावत् वर्णन किये पीछे जैनमत की अच्छे प्रकार सभा को पोल दिखाई। पहिले दिन के शास्त्रार्थ से जैनियों ने अपने मत की हानि देखकर शास्त्रार्थ के स्वीकारकर्त्ता जैनपक्षी सेठ फूलचन्दजी को अनेक जैनों ने जा २ कर धमकाया और कहा कि तुमने यह रोग हमारे और अपने पीछे क्यों लगा दिया ? हमारा मत जैसा है वैसा मानते हैं इस

प्रकार अनेक जैनियों ने फूलचन्दजी को लज्जित किया इससे सेठ फूलचन्द जी दूसरे ही दिन से बीमार होकर घर में पड़ रहे और दूसरे दिन से सभा में नहीं आये थे। इस बात का अनेक सज्जनों को पूरा अनुभाव होचुका है कि जैन लोग अपने मत की चर्चा से ऐसे डरते हैं कि जैसे कोई काल से डरे। इससे प्रकट है कि जैनियों के मत में अत्यन्त पोल है। इस दूसरे दिन के शास्त्रार्थ मे प्रथम जैनियों ने अपना पत्र सुनाया तत्पश्चात् आर्यों ने चौथा पत्र सुनाया।

आर्यों का चौथापत्र जैनियों के तृतीयपत्र के उत्तर में॥

ओ३म्-तृतीयसङ्ख्याके पत्रे नवाशुद्धयः प्रतीयन्ते ताश्च शब्दशास्त्रबोधाभावेन जाता इति निश्चितमेव। इदञ्च तृतीयपत्रं पूर्वमेव दत्तोत्तरम्। पुनश्चतदुपरि लेखः पिष्टपेषणवत्प्रतिभाति। तथापीदं ब्रूमः। यदि विषयिरूपस्य प्रमाणस्य स्वस्वरूपादचाञ्चल्यं तर्हि जिनजैनादिपदार्थानां विषयिरूपत्वं विषयरूपत्वं वा किं भवद्भिरङ्गीक्रियते?। यदिविषयिरूपत्वमूरीक्रियते तन्न युष्मदुक्तपदार्थानां प्रमेयरूपत्वात्, इति पूर्वलेखेन विरुध्यते यदि च विषयरूपत्वं तर्हि जिनजैनादिपदार्थानां साध्यत्वात् भवन्मतमूलं युष्माभिरेवाप्रमाणीभूतं स्वीकृतमिति निग्रहस्थानप्राप्तिः। अस्मन्मते तु प्रमाणस्य प्रामाण्यं स्वतः परतश्चेति मत्वा न कश्चिद्दोष इति। इदानीं च प्रमाणविषयको विचारः समाप्त इति भवत्प्रश्नस्यावकाशाभावः।

अस्माभिश्चादौ यः प्रश्नः कृतोऽस्ति तस्योत्तरं भवद्भिः किमपि नो दत्तं तस्योपरि विचारः सर्वस्मात् पूर्वं कर्त्तुं युक्तस्तस्य प्रयोजनरूपेण निमित्तीभूतत्वात्। जैनमतमूलं सप्रमाणकमप्रमाणकं वेत्यादिविचारे प्रवृत्ते जैनमतसमीक्षणं प्रमाणेनैव भविष्यतीति प्रमेयरूपाज्जैनसम्प्रदायात्पूर्वं प्रमाणं सेत्स्यत्येवेति। तत्रेदं विचार्यते-यदि जिनपदार्थः कश्चित्सनातनः सर्वज्ञो नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावो निरयैश्वर्यसम्पन्नस्तर्हि तस्यैव सनातनसर्वनियन्त्रीश्वरस्य सिद्धावनीश्वरवादो निरस्तः। यदि च कश्चित्कालविशेषोत्पन्नो जिनपदार्थोभिधेयस्तर्हि तस्याधुनिकस्यानित्यत्वात्सर्वज्ञत्वादिगुणासम्भवेन तदुपासनमश्रेयस्करमित्यादयो दोषाः।

ह० भीमसेन शर्मणः

ह० देवदत्तस्य

भाषानुवाद-तीसरे पत्र में नव अशुद्धि निश्चित हुई हैं सो जैनियों के तीसरे पत्र

के नीचे दिखा चुके हैं। वे अशुद्धियां व्याकरण का बोध न होने से हैं यह निश्चित ही है। यद्यपि इस तृतीयपत्र में जो विषय है उसका उत्तर हम पहिले ही दे चुके हैं कि प्रमाण उस वस्तु का नाम है जिससे विषय को जाने यदि वह जानने योग्य विषय हो जायगा तो उसको प्रमेय कहेंगे प्रमाण नहीं कहे सकते फिर प्रमाण का निश्चय करना चाहिये यह कथन नहीं बन सकता। क्योंकि जो स्वयं प्रकाश स्वरूप हो और अन्य पदार्थ उसके प्रकाश से देखे जावें वह प्रमाण कहाता है जैसे एक दीपक से अन्य पदार्थ देखे जाते हैं परन्तु उसी दीपक के देखने के लिये द्वितीय दीपक की अपेक्षा नहीं होती ऐसे ही प्रमाण वही है जिसको सिद्ध करने की अपेक्षा नही किन्तु वह स्वयंसिद्ध है। कहीं २ किसी प्रमाण का निश्चय करने पड़ता है तब उसको प्रमेय कहते हैं किन्तु वह प्रमाण कोटि में नहीं कहाता। जब कोई मनुष्य किसी विषय को विचारना वा देखना चाहता है तब वह पहिले अपने नेत्र को निश्चय नहीं करने बैठता कि मेरे कै नेत्र हैं, कैसे हैं, मैं देख सकता हूं वा नहीं तथा न्यायाधीश जब न्यायालय में न्याय करने को उद्यत होता है तब वह यह नहीं विचारता कि जिस क़ानून से मैं न्याय करूंगा उसी को पहिले निश्चय करलूंकि वह क़ानून ठीक है वा नहीं किन्तु क़ानून के अनुसार न्याय करने लगता है ऐसे ही मत विषय पर विचार होना चाहिये प्रमाण के निर्णय की कुछ आवश्यकता नहीं है। यह आशय पूर्व ही प्रकाशित किया गया था। इसलिये इस पर बार २ लिखना पिसे को पीसना है तथापि यह कहते हैं कि यदि विषयिरूप प्रमाण अपने स्वरूप से चलायमान नहीं होता तो जिनजैनादि पदार्थों को आपने विषयरूप माना वा विषयिरूप माना है इन दोनों में आप क्या ठीक समझते हो ?। यदि कहो कि जिनजैनादिकों को विषयिरूप प्रमाण मानते हैं तो ठीक नहीं क्योंकि आप पहिले लिख चुके हो कि तुम्हारे कहे जिनजैनादि पदार्थ प्रमेयरूप विषय हैं इससे पूर्वापर वदतोव्याघात हो जायगा। यदि विषयरूप प्रमेय मानते हो तो जिनजैनादि पदार्थों के साध्य होने से तुम्हारे मत के मूल को तुमने ही अप्रमाण मान लिया इससे तुम्हारा पक्ष पराजय स्थान में पहुंच गया। हमारे मत में तो प्रमाण निश्चय स्वतः और परतः दोनों प्रकार होता है इससे कोई दोष नहीं आता। अब इस पूर्वोक्त सब कथन से प्रमाण विषयक विचार समाप्त हो गया क्योंकि तुमने पूछा था सो सब समझा दिया गया यदि इतने पर भी न समझो तो कुछ दिन विद्वानों की सेवा करो और पढ़ो तब प्रमाणविषय को पूछना। परन्तु तुमने

जैन मत को ग्रहण किया तो उसको कुछ अच्छा समझ लिया होगा इसलिये हम को जो तुम्हारे जैनमत में शङ्का है उन प्रश्नों का उत्तर दीजिये। हमारे पहिले प्रश्न का उत्तर तुमने अब तक नहीं दिया और हम आप के प्रमाण विषयक उत्तर बराबर देते आते हैं। ऐसे कहां तक टालोगे। हमारे किये प्रश्न पर सब से पहिले उत्तर होना चाहिये क्योंकि सब प्राणिमात्र तथा विशेष मनुष्यों का यही प्रयोजन है कि हमको सुख मिले और दुःखो से छूटें। किसी मनुष्य को पूछिये सभी कहेंगे कि यदि कोई कल्याण का मार्ग ठीक २ समझा देवे तो सर्वोत्तम है क्योंकि सुखकी प्राप्ति ही मुख्य प्रयोजन है। सुख की प्राप्ति अर्थात् मनुष्य का कल्याणकारी कौन मत है यही हमारा प्रश्न है। इसका उत्तर अब तक जैनियों ने नहीं दिया। जैनमत पर जब परीक्षा चलेगी कि जैनमत प्रमाणयुक्त वा अप्रमाण है इत्यादि विचार होने में जैनमत की समीक्षा प्रमाण से होगी तो प्रमेयरूप जैन सम्प्रदाय से प्रमाण पहिले स्वयमेव सिद्ध होजायगा इसलिये प्रथम जैनमत पर विचार होना चाहिये। उस जैनमत पर इस प्रकार विचार चलना चाहिये कि यदि जिन पदार्थ कोई सनातन, सर्वज्ञ, नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्तस्वभाव और अविनाशी ऐश्वर्यवाला है तो वही सनातन सर्व नियन्ता ईश्वर सिद्ध हो जायगा ऐसा होने से अनीश्वरवाद स्वयमेव कट जायगा यदि कोई काल विशेष में सर्वज्ञ होने से उत्पन्न जिन पद का वाच्यार्थ होगा तो उस आधुनिक जिनके अनित्यत्वादि गुणों का आरम्भ है क्योंकि जो किसी समय विशेष में उत्पन्न होता है वह अपनी उत्पत्ति से पहिले होगये समाचारों को नहीं जान सकता ऐसा हो तो तब पिता के जन्म के समाचार को पुत्र भी प्रत्यक्ष कर लेवे सो असम्भव है इसलिये किसी समय विशेष में उत्पन्न हुआ पुरुष सर्वज्ञ नहीं हो सकता फिर ऐसे अल्पज्ञ जिनकी उपासन कदापि कल्याणकारिणी नही हो सकती इसलिये यह जैन संप्रदाय अनेक दोषों से ग्रस्त होने के कारण ग्राह्य नहीं हो सकता। इस प्रकार द्वितीय दिन आर्यों ने अपना पत्र सुनाकर जैनों को दिया और जैनियोंने पूर्वोक्त अपना पत्र सुनाकर आर्यों को दिया तथा कुछ भाषा में अपने २ पक्ष की ओर से दोनों पक्ष के पण्डितों ने कहा पश्चात् द्वितीय दिन का शास्त्रार्थ समाप्त हुआ। इस दिन भी शास्त्रार्थ होने वाद जैनियों की इच्छा नहीं थी कि अब फिर शास्त्रार्थ हो परन्तु आर्य लोग कब मानते थे उन्होंने ता० १७ को सन्ध्या से वार २ संदेशा भेजकर फिर जैनियों को खटखटाया कि कल ता० १८ को

किस समय से शास्त्रार्थ होगा। और आर्यों की ओर पं० ठाकुरप्रसाद शास्त्री जी आगरे से आगये थे इस पर कई लोगों का विचार ठहरा कि पं० ठाकुरप्रसादजी आर्यों की ओर से बोलें और विशेष कर श्रीमान् लाला सोहनलाल जी रईस फीरोज़ाबाद की इच्छा थी कि पं० ठाकुरप्रसादजी भी बोलें तो ठीक हो अगले दिन ता० १८ को १ बजे से शास्त्रार्थ होना नियत हुआ सब लोग नियत समय पर सभा में पहुंचे। प्रथम पं० ठाकुरप्रसादजी शास्त्री को नियत करने का विचार चला इस पर जैनियों ने बहुत वाद विवाद चलाया उनकी इच्छा थी कि वादविवाद में समय कट जावे तो ऐसे ही फंद से छूटें वा आर्य्यलोग यह कह देवेंगे कि पं० ठाकुरप्रसादजी को न बोलने देओगे तो हम शास्त्रार्थ नहीं करेंगे तो भी हमारा कार्य सिद्ध होजावे सो आर्यसमाजस्थ उनको कब छोड़ते थे। अन्त में अनेक वादविवाद एक घण्टा तक होने पश्चात् दो बजे शास्त्रार्थ का प्रारम्भ हुआ।

आर्यों के चौथे पत्र के उत्तर में जैनियों का पांचवां पत्र ॥

यच्च पूर्वपत्रे भवद्भिरुटङ्कितं न लिखितप्रश्नानामुत्तरन्तु जातं भूयपिष्टपेषणवद् ब्रूमइति तच्च सम्यक् प्रमाणस्वरूपनिश्चितसङ्ख्ययोरभिमतप्रमाणलक्षणानां कस्मिंश्चिदपि पत्रे लेखनाभावान्नहि तुलामन्तरेण वस्तुपरिमाणमुपलभ्यते तत् प्रामाण्यं स्वतः परतश्चेत्यशिरस्कवचनं ब्रुवाणैर्युष्माभिः क्रोडीकृतः प्रमाणविषयको विचारश्चरमवर्णध्वंसगत इति ॥ तदपि चित्रंखपुष्पमिलितवत्प्रतीयमानत्वात् नहि किञ्चित्पदार्थापेक्षया स्वतः परतइत्यङ्कितं युष्माभिरतोविरहादतिसाहसमात्रमेतत्कथनमिति पश्यामः किं पुनर्बहुविडम्बनेन यच्च (यदि विषयिरूपस्य प्रमाणस्य स्वस्वरूपादचाञ्चल्यं तर्हि जिनजैनादिपदार्थानां विषयिरूपत्वंविषयरूपत्वं वा किं भवद्भिरंगीक्रियते यदि विषयिरूपत्वमुरीक्रियते तन्न युगदुक्तपदार्थानां प्रमेयरूपत्वात् इतिपूर्वलेखेन विरुध्यते यदि च विषयरूपत्वं तर्हि जिनजैनादिपदार्थानां साध्यत्वाद्भवन्मतमूलंयुष्माभिरेवाप्रमाणीभूतं स्वीकृतमिति निग्रहस्थानप्राप्तिरिति) तदपिवालभाषितं आम्राणां प्रश्ने कोविदारमाचष्ट इतिवत् प्रमाणनिरूपणावसरे भिन्नजिनजैनादिनां विषयविषयित्ववर्णनात् नहि साध्यो विषयो भवितुं नार्हतीति यत्र२सा ध्यस्तत्र२विषयोनेति व्याप्तेरभावात् किञ्च जिनमतंसप्रमाणमस्माकं परन्तु जिनमतंप्रमाणमप्रमाणं वेति विकल्पे प्रमाणपदस्य कः पदार्थो येन जिनमतं युष्माभिः

इदं कारयिष्यामः नित्यत्वानित्यत्वादिकं च प्रमाणाधीनमिति भवद्भिः सविशेषप्रमाणादिः पूर्वं कथनीयः ॥

ह० पन्नालाल जैनधर्मिणः
ह० छेदालाल जैनधर्मिणः

भाषानुवाद—जो पहिले पत्र में आप ने कहा कि आप के लिखे प्रश्नों का उत्तर दे चुके फिर पिष्टपेषण के समान कहैं सो आपका कहना ठीक नहीं प्रमाण का स्वरूप और निश्चित संख्या और शास्त्रकारों के माने हुए लक्षणों को किसी पत्र में भी आपने नहीं लिखा तुला के विना वस्तु का परिमाण नहीं जाना जाता और उस प्रमाण की प्रमाणता स्वतः परतः इस विना शिर के वचन को कहनेवाले आपने स्वीकार किया कि प्रमाणविषयक विचार पूरा हुआ यह भी अत्यन्त आश्चर्य है क्योंकि यह कहना आकाश के फूलों के समान है काहेते कि आपने यह नहीं कहा किस पदार्थ की अपेक्षा से स्वतः और किसकी अपेक्षा से परतः इस युक्ति के विना इस आपके कथन को अतिसाहसपूर्वक समझते हैं बहुत विडम्बना से क्या है और आपने यह कहा कि विषयिरूप प्रमाण अपने स्वरूप से चंचल नहीं तो जिनजैनादि पदार्थों को तुम विषयिरूप मानते हो कि विषयरूप, जो विषयिरूप मानते हो सो ठीक नहीं क्योंकि आपके कहे पदार्थों को प्रमेयरूप होने से इस पूर्व लेख के संग विरोध है और जो विषयरूप मानते हो तो जिनजैनादि पदार्थों के साध्य होने से अपने मत का मूल आपने ही अप्रमाण स्वीकार किया यह निग्रह स्थान की प्राप्ति है यह आप का कहना भी वालक अर्थात् अज्ञानी कामा है क्योंकि पूछे आम बताये अमरूद इसके समान प्रमाण निरूपण समय में जिनजैनादि का विषयविषयित्व वर्णन करते हो और यह नियम नहीं कि साध्य विषय न होसके क्योंकि जहां २ साध्य वहां २ विषय नहीं यह व्याप्ति नहीं और हमको तो जैनमत प्रमाण सिद्ध है परन्तु जिनमत प्रमाण है या अप्रमाण है इस आप के विकल्प में प्रमाण पद का क्या अर्थ है जिससे आप को जिनमत की दृष्टिता करावें और नित्य अनित्य का ज्ञान भी प्रमाण के आधीन है इससे तुम पहिले प्रमाण के स्वरूपादि कहो ।

आर्यों का पांचवां पत्र जैनियों के चौथे पत्र के उत्तर में ॥

जैनानां पूर्वपत्रे व्याकरणानुसारतो दिगशुद्धयः श्रीमद्भिः । सर्वव्यवहाराणां प्रमाणपूर्वकत्वप्रमाणपूर्वकत्वेत्ययुक्तमिति प्रतिज्ञातम् । एतद्वाक्यान्तर्गतमयुक्त-

मिति सिषाधयिषितम्। व्यवहाराणां वैलक्षण्यादिति हेतुना। अत्रायं प्रश्नः व्यवहारवैलक्षण्यरूपहेतोः प्रमाणपूर्वकत्वमप्रमाणपूर्वकत्वं वेत्ययुक्तमिति वाक्यघटिताऽयुक्तत्वरूपसाध्यस्य च क्व व्याप्तिरस्ति, किं पुरुषोऽयुक्तत्वरूपसाध्याभावविशिष्टविलक्षणव्यवहारे न प्रवर्त्तते दृश्यते च सर्वेषाम्पुरुषाणां निष्टङ्का सर्वत्र प्रवृत्तिस्तत्राऽयुक्तत्वरूपसाध्याभावेन व्यवहारवैलक्षण्यरूपहेतोश्च सत्वेनायुक्तोयं हेतुः। निरवच्छिन्नमूलधूमसत्ववन्हेरवश्यं भावनियमात् किञ्च व्याकरणशास्त्रोक्तदिशानेकशुद्धिग्रस्तत्वेन पूर्वापराविरोधसद्भावेन चात्यन्तउपेक्षयो भवतां लेखः। अशुद्धीनामनेकत्वात् ताश्च समयान्तरे प्रदर्शयिष्यामः। विरोधश्चायं येन व्यवहाराणां प्रमाणपूर्वकत्वं तत्प्रमाणं किमिति प्रश्नस्य सार्थक्यादिति वाक्ये तत्प्रमाणं किमिति वाक्येन प्रश्नः कृतः, लिख्यते चाग्रे नास्माकम्प्रमाणस्वरूपादौ संशय इति रात्रिन्दिवयोरिवात्यन्तविरोधाक्रान्तत्वात्। अपि च सर्वे व्यवहाराः प्रमाणनिर्णयमकृत्वैव प्रवर्त्तन्ते नायं नियमः। प्रमाणानि च शास्त्रज्ञानवतां प्रमाणत्वेनज्ञातानि शास्त्राज्ञानवताञ्च प्रमाणत्वेनाज्ञातान्यपि व्यवहाराप्रतिबन्धकानि भवन्तीति सम्मतम्। प्रमाणनिर्णयमनधिगम्यापि प्रवर्त्तन्ते च विद्वांसः प्राकृताश्च जना हट्टादिषु क्रयविक्रयव्यवहारे, भवद्भिरपिकतिप्रमाणानि कानि च तेषां लक्षणानीति निर्णयमकृत्वैव पत्रलेखनं कृतं ततश्च सिद्धमेतत् यद्वादिनोः सभायां मतप्राबल्यदौर्बल्याभ्यां जयपराजयौ निश्चीयेते। अथ तत्रैव चेदाग्रहः सभायामागत्य तद्विषयकाः प्रश्नाः क्रियन्तामित्यलं भुत्सु ॥

ह० भीमसेन शर्मणः
ह० देवदत्त शर्मणः

भाषानुवाद—आपने यह प्रतिज्ञा की कि यह बात अयुक्त है कि सब व्यवहार प्रमाणपूर्वक या अप्रमाणपूर्वक होते हैं इसमें अयुक्त साध्य है और व्यवहारो में वैलक्षण्य हेतु है इसमें यह प्रश्न है कि व्यवहारवैलक्षण्य हेतु की और अयुक्तत्वरूप साध्य की कहां व्याप्ति है क्या मनुष्य अयुक्तत्वरूप साध्य से विलक्षण व्यवहार में नहीं प्रवृत्त होता? सब मनुष्यों की सब जगह निःशंक प्रवृत्ति देखते हैं वहां अयुक्तत्वरूप साध्य नहीं और व्यवहारवैलक्षण्यरूप हेतु है इससे हेतु है अयुक्त है जहां पर्वत के मूल से आकाश तक धूम हो वहां वन्हि के अवश्य होने का नियम है और व्याकरण की रीति से अनेक अशुद्धि और पूर्वापर विरोध होने से आपका लेख अत्यन्त

उपेक्षा करने योग्य है वे अशुद्धि कालान्तर में दिखावेंगे और विरोध यह है कि जिससे व्यवहारों को प्रमाणपूर्वकत्व है वह प्रमाण क्या इससे प्रश्नसार्थक है इसमें वह प्रमाण क्या इस वाक्य से प्रश्न किया और आगे जाकर लिखा कि हमको प्रमाण स्वरूपादि में संशय नहीं सो यह रात्रि दिन के समान अत्यन्त विरुद्ध है और यह नियम नहीं है कि सब व्यवहार प्रमाण निर्णय के विना किये ही प्रवृत्त हों और शास्त्रज्ञान वालों को प्रमाणरूप से नहीं जाने हुए और शास्त्र के अज्ञानियों को प्रमाणरूप से नहीं जाने हुए भी प्रमाणव्यवहार के प्रतिबन्धक नहीं होते यह सम्मत है और प्रमाण निर्णय के विना किये भी विद्वान् और हट्ट आदि के लेने देने में प्राकृत जन प्रवृत्त होते हैं तुमने भी कितने प्रमाण और उनके क्या लक्षण यह निर्णय किये विना ही पत्र लिखा इससे यह वात सिद्ध हुई कि वादियों के मत की प्रवलता और दुर्वलता से ही जयपराजय का निश्चय होता है जो उसी प्रमाण निर्णय में आग्रह है तो सभा में आनकर उस विषयक प्रश्न करो विद्वानों में इतना वहुत है।

विशेष—यह उक्त पत्र सभा मे सुनाया गया और जैन मत पर कुछ विशेष कहा गया तव पं० छेदालाल जैनी ने श्रीस्वामी दयानन्दसरस्वतीजीकृत सत्यार्थप्रकाश को लेकर कोई २ दोष दिखायें और कहा कि हमारे मत विषय में सव मिथ्या लिखा है सर्वदर्शनसंग्रह के पुस्तक में कुछ दिखाया कि यह जैन मत नहीं है इत्यादि कहा उसका यथोचित उत्तर दिया गया। जो २ वार्त्ता विना लिखी हुई है उन सबको यथावत् कोई नहीं कह सकता इसलिये सबका लिखना उचित नहीं है। यदि एक वचन वा प्रमाण का स्मरण हुआ और उसके सम्बन्ध की सव युक्ति वा प्रमाण लिखे जावें तो वहुत लेख वढ़जावे और ऐसा लेख करना उचित भी नहीं जान पड़ता है, इसलिये विशेष वढ़ाना ठीक नहीं (इस दिन भी शास्त्रार्थ होने वाद जैनियों की इच्छा नहीं थी कि अब फिर शास्त्रार्थ हो परन्तु आर्य्य लोग कव मानते थे) इस प्रकार अठारह तारीख़ को ४ वजने में ५ मिनिट शेष रहे उस समय में शास्त्रार्थ का सारांश और जैन पण्डितों की कुटिलता पर और जैनमत की समीक्षा पर आर्य पण्डित कह रहे थे उसको सुनकर जैन वहुत लज्जित हुए और उच्चस्वर से कहने लगे कि समय हो गया इस पर श्रीमान् चतुर्वेदी राधामोहनजी और श्रीमान् राय सोहनलालजी ने कहा कि अभी समय वाक़ी है हल्ला न करो, श्रीमान् चतुर्वेदी कमलापतिजी ने सम्पूर्ण शास्त्रार्थ द्रष्टा और विशेष कर राय सोहनलालजी की पूर्ण इच्छानुसार श्रीमान् पण्डित

ठाकुरप्रसादजी के व्याख्यान होने के लिये सभा से निवेदन किया इन जैन लोगों ने किसी की एक न सुनी और एक साथ सभा से उठकर चल दिये। (इससे शहर के प्रतिष्ठित रईसों को भी इनकी योग्यता अच्छे प्रकार प्रकट होगई सभा में कोलाहल मचजाने से वहां व्याख्यान न हुआ तात्पर्य्य यह था कि इस दिन इनकी पोल अच्छे प्रकार खोली गई कुछ शेष रही थी यदि बैठे रहते तो सभी इनकी पोपलीला प्रकट होजाती) आर्य लोग भी अपने २ घर आये सर्वसम्मत्यनुसार श्रीमान् राय साहब सोहनलालजी के स्थान पर ता० १८ को सन्ध्या के ७ बजे पं० ठाकुरप्रसादजी शास्त्री का व्याख्यान जैनमत विषय पर ठहरा, तदनुसार सब नगर में विज्ञापन दिये गये, नियत समय व्याख्यान हुआ नगर के सभ्यों को बड़ी प्रसन्नता हुई पं० जी ने न्याय आदि शास्त्रों से जैनमत की अच्छे प्रकार समीक्षा की, सभा की समाप्ति में पं० सीताराम चतुर्वेदी मैनपुरी निवासी ने आर्य्यों की प्रशंसा कविताई में पढ़ी।

ओम्

(दोहा)—सत्यासत्य विचारहित, भये विज्ञ एकत्र।
वाक्यामृत की वृष्टि करि, सन्तोषे जन तत्र॥

कवित

ईश अवराधक शुभसत्यता प्रकाशक अवगुणादिनाशक सुशासक विज्ञान के,
देशगतिसुधारैं वेदसम्मतप्रचारैं वाक्य उचित उचारैं नहिं ग्राहक धनदान के।
विद्यानुरागी असत्य मत त्यागी ऐसे बड़भागी हितचिन्तक प्रज्ञान के,
सीताराम पुलकित ह्वै पुनि२ धन्यवाद देत कहां लगि गाऊं गुण आर्य्यमहान् के॥

आपका शुभचिन्तक
सीताराम चतुर्वेदी
मैनपुरी

और उसी दिन अनेक आर्य लोगों ने नगर मे जहां तहां व्याख्यान देना आरम्भ किया इस व्याख्यान के पश्चात् आर्य लोगों को फिर वही चिन्ता लगी कि ता० १९ को कब से शास्त्रार्थ होगा। इसलिये एक पत्र सेठ फूलचन्दजी के नाम भेजा।

ओ३म्

सेठ फूलचन्दजी योग्य—आप कृपा करके बहुत शीघ्र उत्तर दीजिये कि कल

शास्त्रार्थ का आरम्भ किस समय से होगा। प्रभात समय शास्त्रार्थ का निश्चय होने में बड़ी हानि होती है, इससे अभी शास्त्रार्थ का समय निश्चय करके सूचित कीजिये॥

१८—३—८८

द० गङ्गाराम

रात्रि के ८ बजे प्र० चैत्रसुदी ६ रवौ मन्त्री आर्य्यसमाज फ़ीरोज़ाबाद

इस पत्र का उत्तर सेठजी ने कुछ नहीं दिया और अनेक लोगों से जैनों की अन्तरङ्ग चर्चा सुनी गई कि अब जैन शास्त्रार्थ करना नहीं चाहते। तब ता० १९ को प्रातःकाल एक पत्र जैनियों के पास और भेजा गया कि:—

ओ३म्

श्रीयुत लाला मंजूलाल, प्यारेलाल, फूलचन्दजी जैनधर्मावलम्बियों को विदित हो कि हमारा आपका शास्त्रार्थ इसी समय आरम्भ होजावे इसमें क्षणभर भी विलम्ब नहीं होना चाहिये, क्योंकि हमारे महाशय लोग बड़े २ कार्य को छोड़कर बहुत दूर से केवल इसी कार्य के लिये आये हैं यदि आप कहें कि हमारे मेले में हानि होती है और समय थोड़ा है तो हमको पहिले ही विज्ञापन क्यों नहीं दिया कि हम मेले के दिनों में शास्त्रार्थ न करेंगे यदि आपको किसी विषय में प्रश्न करना हो तो सभा में ही आकर कीजिये यदि आप आज दश बजे से शास्त्रार्थ न करेंगे तो आपका पराजय समझा जावेगा, हम लोग अधिक प्रतीक्षा न करेंगे इस पत्रका उत्तर तत्काल न देने से भी पूर्वोक्त व्यवस्था सिद्ध होगी।

१९। ३। ८८ई० सोमवार

आपका कृपाकांक्षी-
गङ्गाराम वर्म्मा
मन्त्री—आर्यसमाज, फ़ीरोज़ाबाद

इस पत्रका भी कुछ उत्तर नहीं दिया और न पत्र लिया ता० १९ से पत्र लेना भी बन्द कर दिया तब ता० १८ के संस्कृत के ५ वें पत्र का उत्तर संस्कृत में लिखकर भेजा गया सो भी नहीं लिया पीछे समाज के दो चार आदमी सज्जन लोग लेगये तब भी सेठ जी ने पत्र न लिया तब यह कहा गया कि आप पत्र नहीं लेते तो यह लिखा दीजिये कि हम पत्र नहीं लेते सो यह भी नहीं लिखा तब आर्य लोगों ने शहर के दो चार लोगों को (जो आर्यसमाज में वा जैन मत में नहीं थे) कहा कि आप इस पत्र को सेठजी के समीप ले जाइये। वे लोग लेगये तब भी पत्र नहीं लिया परन्तु आर्य

लोगों ने उनको साक्षी कर लिया वह आर्य्यों ने भेजा छठा पत्र यह था कि:—

जैनियों के पांचवें पत्र के उत्तर में आर्यों का छठा पत्र ॥

पूर्वप्रहितभावत्कपत्रे केवलं प्रमाणस्वरूपभेदविषयाणां प्रश्नो जातः । इतश्च ते प्रदर्शिताः । अधुनाप्रतिभाति चैतद्यद्भावत्कैस्तेषां लक्षणानभिज्ञैर्भूयते । अतश्च तानि प्रकारान्तरेण देवानां प्रियावगमाय पुनः प्रतिपाद्यन्ते प्रत्यक्षानुमानोपमानशब्दाः प्रमाणानीति संख्याचतुष्टयविशिष्टं तार्किकसंमतं प्रमाणस्वरूपम्॥ वैशेषिकराद्धान्ते प्रत्यक्षं चानुमानंचेति प्रमाणद्वयम् । साङ्ख्ययोगयोश्चसिद्धान्ते प्रत्यक्षानुमानागमाः प्रमाणानीति प्रमाणत्रयम् । पूर्वमीमांसकमतानुसारिणस्तु प्रत्यक्षानुमानोपमानशब्दैतिह्यार्थापत्तिसम्भवाभावा अष्टौ प्रमाणानि मन्यन्ते । उत्तरमीमांसकास्तुव्यवहारदशायां ह्यष्टौ प्रमाणान्युररीकुर्वन्ति । लक्षणानि च प्रत्यक्षानुमानिक्यौपमानिकीशाब्दप्रिमाणां करणं तत्तत्प्रमाणम् । यथाच प्रात्यक्षप्रमायाः करणं प्रत्यक्षं प्रमाणमित्यादि धेयेतिमम् । अनिर्दिष्टप्रवक्तृकं पारम्पर्यक्रमागतज्ञानकरणमैतिह्यम् । अर्थादापत्तिरर्थापत्तिः । यत्राभिधीयमानेऽर्थे योऽन्योऽर्थः प्रसज्यते साऽर्थापत्तिः । सम्भवोनामाविनाभावितोऽर्थस्य सत्ताग्रहणादन्यस्य सत्ताग्रहणम् । अभावविरोध्यभूतं भूतस्येति । प्रदर्शितप्रमाणस्वरूपसंख्या लक्षणेषु सत्यां विप्रतिपत्तौ अर्द्धघटिकापरिमितसमयेन सप्रमाणं प्रदर्शनीया । तुलामन्तरेणेत्यारभ्य कथनीयेत्मन्तं पूर्वापरविरोधादनेकपराभूतिविशिष्टत्वात् सर्वथोपेक्ष्यः शिलकुलेखइत्यलमतिपल्लवितेन ।

ह० भीमसेनशर्मणः
ह० देवदत्तशर्मणः

भाषानुवाद—आप के पहिले पत्र में प्रमाण के स्वरूप, भेद और विषय का प्रश्न था इससे स्वरूपादि विषयों का उत्तर दिया गया । अब जान पड़ता है कि आप उन के लक्षणज्ञान से सर्वथा शून्य हैं इसलिये वे प्रमाण स्वरूपादि प्रकारान्तर से तुम को बोध होने के लिये दिखाये जाते हैं प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द, ये चार प्रमाण नैयायिक सम्मत हैं । वैशेषिक शास्त्र में प्रत्यक्ष, अनुमान, दो प्रमाण माने हैं । साङ्ख्य और योगशास्त्र में प्रत्यक्ष, अनुमान और आगम, तीन प्रमाण माने हैं । पूर्व मीमांसा में चार न्याय वाले, ऐतिह्य, अर्थापत्ति, सम्भव और अभाव आठ प्रमाण माने हैं । उत्तरमीमांसा में भी व्यवहार दशा में उक्त आठ प्रमाण माने हैं । प्रमाणों के लक्षण

प्रत्यक्षादि बुद्धियों का तत्ताद्विषय में यथावत् होना प्रत्यक्षादि प्रमाण हैं इत्यादि प्रत्येक के लक्षण भी सस्कृत मे लिखे हैं। यदि इन लिखित प्रमाण के स्वरूपादि में कुछ सन्देह रहे तो प्रमाणसहित आध घड़ी में उत्तर दीजिये आगे जो तुम्हारे पञ्चम पत्र में "तुलान्तरेण०" इत्यादि लेख है वह पूर्वापर विरुद्ध होने से अनेक प्रकार से तुम्हारा पराजय प्रकट करता है इसालिये उपेक्षणीय है इति शम्। यह पत्र न लिया और जैनियों के ओर के प्रबन्धकर्त्ताओं ने सभापति ज्वालाप्रसादजी से यह निश्चय किया कि अब शास्त्रार्थ करना वन्द करादिया जावे और जैनियों की ओर से यह न मालूम हो कि जैन लोग शास्त्रार्थ नहीं करना चाहते किन्तु उपद्रव के भय से प्रवन्धकर्त्ताओं ने शास्त्रार्थ होना बन्द कर दिया इस प्रकार का एक पत्र जैनप्रबन्धकर्त्ताओं ने बनाकर सभापति के हस्ताक्षर करा लिये पर आर्य्यप्रवन्धकर्त्ताओं के पास लाये तो इन्होंने हस्ताक्षर न किये और कहा कि जैनी लोग यदि शास्त्रार्थ करना चाहें तो जैनी और आर्य्यों की ओर से दश २ आदमी एक स्थान में दश २ हाथ पर बैठे रहें बीच में पुलिस बैठी रहे कोई किसी से बोले नहीं वा कोई प्रतिष्ठित रईस प्रश्न करे उसका उत्तर अपनी २ विद्या वा मतानुसार दोनो पक्ष वाले उस रईस के प्रति देवे इत्यादि अनेक प्रकार निकल सकते हैं कि जिससे उपद्रव कदापि न होवे, परन्तु जैनों ने किसी की न सुनी शास्त्रार्थ करने से सर्वथा हट गये। इसके पश्चात् आर्य्य लोगों ने ता० २० को एक विज्ञापन शहर में दिया कि:—

ओ३म्

सर्व सज्जनों को विदित किया जाता है कि किसी कारण से न करने शास्त्रार्थ जैन भाइयों के हमारे विद्वान् पुरुष स्वस्थान को आज पधारेंगे इससे हम फिर भी १ घंटे का अवकाश जैनमतावलम्बियों को देते हैं कि शंकानिवारण या शास्त्रार्थ करना चाहें तो आकर करें वाद चले जाने विद्वानों के कहना उनका माननीय न होगा।

प्र० चैत्र शु० ८ भौम दिन—२०—३—८८ ई०

गङ्गाराम वर्म्मा
मन्त्री, आर्य्यसमाज।
फीरोजावाद

इसके पश्चात् सब लोग अपने २ नगरों को पधारे जो वाहर से आये थे। इस प्रकार शास्त्रार्थ समाप्त हुआ॥

ओ३म् तत्सत्

जैनियों का प्रमाद ॥



विदित हो कि जो शास्त्रार्थ वेदमतानुयायी और जैनमतावलम्बियों से नगर फ़ीरोज़ाबाद में हुआ था उसका ठीक २ वृत्तान्त वोही महाशय कि जिनकी शास्त्रार्थ समय उपस्थिति हुई थी जानते होंगे और होने का कारण भी उन्हीं महाशयों पर प्रकट है कि जो यहां के रहनेवाले हैं ये दोनों बातें सत्य २ तभी सम्पूर्ण महाशयों पर विदित हो सकती हैं जब पक्षपात रहित द्रष्टा पुरुष लिखे या कहें, शास्त्रार्थ फ़ीरोज़ाबाद का सारांश जो मुंशी जगनकिशोर साहब ने छपवाया है वह बहुत ही सही यानी सत्य है जैसे मैंने अपनी अल्पबुद्धि से उसको सत्य समझा है ऐसे और भी महाशयों ने जो पक्षपातरहित होंगे समझा होगा, क्योंकि सत्य के कारण से किन्तु जैनी महाशयों के शिर से अभीतक पक्षपात का भूत नहीं उतरा कहीं तो ऐसे गपोड़े हांकने लगे कि हमसे आर्य्य हार गये और हमारे प्रश्न का कुछ उत्तर न देसके इससे भी अधिक प्रत्येक जैन मिथ्याभाषण करने लगे इनकी प्रपंचमय वार्ताओं को सुन आर्य्य पुरुषों ने बहुत सहन किया तो भी पराजयभूषण जैनी अपना पराजय छिद्र दबाने के लिये ठौर २ और भी अधिक मिथ्याभाषण करने लगे इस पर मंत्री आगरासमाज ने प्रसिद्धिपत्र इस आशय का दिया कि यदि अब भी जैनी कुछ पुरुषार्थ रखते हों तो हम सर्वत्र जैनियों को सूचित करते हैं कि एक हफ्ते के अन्दर हमसे फिर शास्त्रार्थ करें। सज्जनो ! ध्यान की जगह है, ग़ौर का मुक़ाम है, ख़याल की बात है, बुद्धि की परीक्षा है यदि ये ऐसे ही सभाजीत थे तो क्यों न शास्त्रार्थ किया इनकी शास्त्रज्ञता तो भले प्रकार ३ दिवस के शास्त्रार्थ फ़ीरोज़ाबाद ही में प्रकट होगई थी कि पराजयदल में ऐसा दबाव डाला कि पत्र और विज्ञापनों से भी शास्त्रार्थ करने को समर्थ न हुए फिर ये किस बल से शास्त्रार्थ करते, जैनमतावलम्बियों ने शास्त्रार्थ फ़ीरोज़ाबाद जो छपवाया है उसको शास्त्रार्थद्रष्टा सज्जन लोग तो अवश्य २ ही सत् असत् को जान गये होंगे किन्तु मैं अपनी अल्पबुद्ध्यनुसार सर्व के ज्ञातार्थ प्रमाद से जो उन्होंने विपर्य्यय छपवाया है उसको प्रगट करता हूं क्योंकि—

चौपाई ॥

अति संघर्षण करे जो कोई । अनल प्रकट चन्दन ते होई ॥

जैनियों का प्रमाद प्रमाद प्रमाद

प्रथम प्रमाद.

श्रीस्वामी भास्करानन्दजी के विषय में जो छपवाया है यह उनका अति ही प्रमाद है स्वामी भास्करानन्द यहां से जव पधारे तव पं० पन्नालाल का पत्र इस आशय का आगया कि मैं इस समय नहीं आसकता मेरे पैर मे फोड़ा है जब पन्नालाल ने फोड़े का मिस किया तव सेठ साहब ने चतुर्वेदी कमलापति साहव और उक्त स्वामीजी से यह कहा कि अब हमारा तुम्हारा शास्त्रार्थ मत विषय का मेले पर यानी ता० १५ मार्च सन् १८८८ ई० से अवश्य होगा इसको सर्वसज्जन भले प्रकार जानते हैं कि जब पन्नालाल न आये तो भी स्वामी भास्करानन्दजी ने १७ फरवरी को अपने व्याख्यान में यह कहा कि यदि अब भी कोई प्रतिष्ठित जैनी यह कहे कि हम कल या ता० १८ फरवरी १८८८ ई० को पं० पन्नालाल को अवश्य २ बुला लेंगे तो मैं कदापि बांकीपुर के शास्त्रार्थ में नहीं जाऊंगा चाहे मेरे पहुंचने के लिये वहां से तार आही गया है इसको किसी जैनी ने कल के लिये यानी ता० १८ फरवरी को स्विकित नहीं किया और सेठ फूलचन्द साहव ने यही कहा कि मेले पर हमारे पं० लोग अवश्य आवेंगे, सज्जनो ! जब सेठ साहव ने किसी तरह से उस समय शास्त्रार्थ करना स्वीकृत न किया तव स्वामि भास्करानन्द सरस्वतीजी बांकीपुर को पधारे।

२–प्रमाद॥

इनके पत्रों के उत्तर ठीक २ समय पर पहुंचते रहे यह लिखना भी प्रमाद से असत्य है बल्कि आर्य्यपुरुषों के दो पत्रों का तो जैनी महाशयों ने उत्तर भी नही दिया और जैनियों ने किसी पत्र का उत्तर भी ठकि २ भले प्रकार नही दिया कुछका कुछ उत्तर देते रहे यह वात भी सर्वसज्जनों को विदित है॥

३–प्रमाद॥

पंडित भीमसेन शर्म्माजी और सेठ फूलचन्द साहव में जो नियम नियत होगये थे उनके सिवाय कुछ भी न्यूनाधिक नहीं हुए, यह लिखना जैनियों का सर्वथा व्यर्थ है इनके लेख ही से इनका झूठ यानी मिथ्याभाषण सिद्ध होता है क्योंकि जव ये लिखते हैं कि न्यूनाधिक कर दिये थे सज्जनो ! ध्यान से देखिये कि यह इनकी कैसी प्रपंचयुक्त वार्त्ता है मानो जो न्यून होगये थे उनको वढ़ा के और जो अधि-

क होगये थे उनको दूर करके नियम क्यों न माने और यह लिखा है कि पं० भीमसेन शर्म्मा अपने धर्म से कह देवें यही नियम ठहरे थे यह लिखना और भी जो उक्त पं० जी के विषय में लिखा है बिलकुल असत्य ही है इसको सम्पूर्ण द्रष्टा शास्त्रार्थ सज्जन लोग भले प्रकार जानते हैं, भो विद्वज्जनो ! इनका पूर्ण सिद्धान्त नियमों का न मानना ही इनके लेख से सिद्ध होता है जब अनियम कार्य करना ही जैनी महाशयों को प्रिय लगता है तो इनके बीच में शास्त्रज्ञता की गंध मेरी भी अल्पबुद्धि के अनुसार कोई विद्वान् नहीं कह सकता देखो नियम ही से सम्पूर्ण कार्य संसार के होते हैं अनियम से कोई भी नहीं होता है फिर अनियम कार्य कैसे हो सकता है जब जैनी पं० शास्त्रार्थ के साधारण नियमों का होना मुख्य नहीं समझते तो शास्त्रार्थ करने की योग्यता इनमें कोई विद्वज्जन कब अनुमान कर सकता है जब जैनियों की इच्छानुसार आर्य्यपुरुषों ने पंच और सरपंच स्थान स्वीकार किया फिर किस प्रकार से आर्य्यपुरुषो का हठ इच्छानुसार नियम नियत होने का सिद्ध हो सकता है ? ॥

४—प्रमाद ॥

मध्यस्थ के विषय मे हम जैनियों का अत्यन्त ही प्रमाद प्रकट करते हैं कि जिनमें शास्त्रार्थ और सभ्यता का व्यवहार किंचित् भी प्रकट नहीं जान पड़ता है आधुनिक आर्य और जैनियों के विद्वानों से भिन्न मतावलम्बी मध्यस्थ हो इस लेख से और भी अल्पज्ञता जैनी महाशयो की प्रकट होती है कि शास्त्रार्थ के प्रकार से होता है और उसके विशेष २ नियम सर्वोत्तम क्या हैं प० भीमसेनजी शर्म्मा ने यह कदापि नहीं कहा कि हमारे सर्व विरोधी हैं और सत् असत् का निर्णय करनेवाला कोई नहीं है ऐसा अनर्थरूप लेख लिखना जैनी महाशयों की ही योग्यता है क्या आज आर्य, जैन, मुसल्मान, ईसाइयों के अनेक सम्प्रदाय हैं इनमें एक महाशय से पूछा जाय या सर्व से पूछ के जो सिद्धान्त निश्चय किया जाय तो कौन श्रेष्ठ होगा देखो श्रीमती महारानी विक्टोरिया आज कमेटी यानी वहुसम्मति पर ही सर्वकार्य करती हैं ऐसे ही पं० भीमसेन शर्म्मा का यह कथन था कि हमारे तुम्हारे लेखो को देख कर सर्व जगत् और सर्व विद्वान् जयाजय जान सकते हैं, ऐसे मध्यस्थ की कुछ इस शास्त्रार्थ में आवश्यकता नही है, ऐसे मध्यस्थ की आवश्यकता जैनी महाशय समझते हैं तो मेरी अल्पबुद्धि के अनुसार शास्त्रार्थ करना वृथा था उसी मध्यस्थ से ही

पूछ लिया जाता कि किनका सिद्धान्त ठीक और मत प्राचीन है विद्याहीन जैनियों का अपने दुराग्रह और अपना कपोलकल्पित जाल कटने के भय से यही आशय इनके लेख से सिद्ध होता है कि शास्त्रार्थ न हो जैनियों की मंदता देखिये कि वे आधुनिक दयानन्दमतावलम्वी लिखना क्या इनको लज्जा नहीं आती है यदि ऐसे ही पं० थे तो इन शब्दों को सभा मे क्यों नहीं सिद्ध किया जब पं० भीमसेनजी शर्म्मा ने यह कहा था कि अगर तुम वेद को कपोलकल्पित आधुनिक आर्य्य और दयानन्दमतीय सिद्ध करदो तो हमारा तुम्हारा इस पर शास्त्रार्थ सही इस कहने पर इनके मुख बन्द होगये कुछ उत्तर न दे सके, प्रियवरो ! इन जैनी पं०को सिवाय मिथ्या प्रलाप के कुछ विशेष नहीं आता, सज्जनो ! शास्त्रार्थ दो प्रकार से होता है एक तो मुखद्वारा दूसरा लेखद्वारा लिखित शास्त्रार्थ के जयाजय के ज्ञाता सर्व विद्वान् और सर्व जगत् होता है और मुखद्वारा के शास्त्रार्थ के द्रष्टा वे ही लोग होते हैं जो तत्काल उपस्थित हों मध्यस्थ प्रबन्धकर्त्ताओ का होना अवश्य चाहिये क्योंकि जिससे शास्त्रार्थ समय कोई पक्ष नियमविरुद्ध प्रतिकूल कार्य न करे ।

५—प्रमाद ॥

सज्जन पुरुषो ! इनका, धर्म से ज्यों का त्यों इस पुस्तक के लिखने मे प्रमाद और मिथ्याभाषण प्रगट करता हूं एक लघु वात यह है कि पं० पन्नालाल ने शास्त्रार्थ के पत्रों में अपना नाम अनुस्वार लगाकर कई पत्रों पर लिखा था इसको सर्व सज्जन शास्त्रार्थद्रष्टा भले प्रकार जानते हैं यदि किसी महाशय को प्रतीत न हो तो मैं पं० पन्नालाल के लेखो को दृष्टिगोचर करा सकता हूं फिर ज्यों के त्यों धर्मपूर्वक लेख कोई भी जैनी और जैन पं० सिद्ध कर सकता है, क्या मिथ्याभाषण को ही जैनी पंडितो ने धर्म समझ लिया है इनका इस विषय में सम्पूर्ण लेख मिथ्याभाषण और पक्षपात की अनेक व्याधियों से अभिग्रस्त है ।

६—प्रमाद ॥

जैनी पंडितों को व्याकरण का पूर्णबोध न होने से उन्होंने अपने पत्रों में विशेष अशुद्धियां की और आर्य पं० ने अपने प्रत्येक पत्र में इनकी अशुद्धियों की गणना प्रगट की और सभा में पं० भीमसेनजी शर्म्मा ने यह भी कहा कि जैनी पं० यह कहें कि ये अशुद्धियां हैं या पीछे शुद्धि बना ले तो इसी समय हम अशुद्धियों को जैनी पं० के संमुख व्याकरणशास्त्र से सिद्ध कर सकते हैं, इस पर व्याकरण

शून्य जैनी पं० ने कुछ उत्तर न दिया और शास्त्रार्थ जो छपवाया है उसमे लिखते हैं कि आर्य्यों के पत्रों मे भी अधिक अशुद्धियां हैं यह लिखना कैसा अज्ञानता से निर्मूल है जैनियों के सम्पूर्ण पत्रों को देखकर सर्व को इनका झूठ और भी अधिक प्रतीत होगा कि जैनी महाशयों ने पत्रों में तो कहीं अशुद्धियों की चर्चा भी नहीं लिखी और न इनके लेख से जो पत्रो में है यह सिद्ध हो कि कोई अशुद्धि है फिर अशुद्धियों के विषय मे लिखना सर्वथा व्यर्थ ही है, जैनी महाशयों के लेख से यह बात सर्व सज्जनो को विदित होजायगी कि अपनी अशुद्धियो को बना लेना और आर्य्यों के पत्रों में मिथ्या अशुद्धियां प्रगट करना इस एक ही लघु बात से सिद्ध है जो मैं पं० पन्नालाल सा० के हस्ताक्षरों के विषय में पूर्व लिख चुका हूं और छठा पत्र तो जैनी महाशयों ने अपने अत्यन्त प्रमाद की प्रबलता से मन माना लिख दिया है सभा में तो इस पत्र को नहीं दिया और न आर्य्यसमाज में भी किसी के हस्तगत होके भेजा यह बात इनकी मिथ्या प्रपंच की नहीं है ?, जब यह नियम था कि एक २ पत्र दोनों पक्षवाले एक दूसरे को देदें फिर छठा पत्र किस प्रकार से जैनियों का अधिक आना कोई विद्वान् कब अनुमान प्रमाण कर सकता है ?॥

७—प्रमाद ॥

मैं अपनी अल्पबुद्धि के अनुसार जैनियों के प्रत्येक विषय के लेख का स्थूल बातों में ही प्रमाद प्रगट करता हूं, जब इनके लेख से यह सिद्ध है कि हमारे और इन के परस्पर यह बात ठहरी थी कि संस्कृत के लेखानुसार भाषानुवाद करके सभा को सुना दिया करेंगे, सज्जनो ! ध्यान कीजिये इन लेखों के भाषानुवाद को कि यह संस्कृत का ही अनुवाद है ! उस पर भी यह अधिकता कि प्रमाद से परामर्श का पीछा तो पांच २ या छः २ पृष्ठ तक न छोड़ा कहीं की ईंट कहीं के रोड़े का उदाहरण पूरा दरसाने लगे और अपने लेखों में विरोधाविरोध का भी ध्यान न रहा, सज्जनो ! इन के संस्कृत लेखों पर अच्छे प्रकार ध्यान देना चाहिये कि परामर्श सत्यार्थप्रकाश और सर्वदर्शनसंग्रहादि के पृष्ठ और पंक्तियों को लिखना इनके पत्रों के कौन से शब्द के अर्थ से प्रगट होता है, यदि यही भाषानुवाद संस्कृत का हो तो अपने सम्पूर्ण ग्रन्थ और सप्तभंगी न्याय का जैनियों ने पूरा उल्था क्यों न लिख दिया, प्रियवर जैनियो ! तुम्हारे इन झूठ मूठ के लड्डुओं के खाने से क्षुधा न दूर होगी कहीं सत् के संमुख असत् और आधुनिक जो जैनमत है वह ठहर सकता है शंकराचार्यादि आचार्यों की

सहस्रों फटकारों के लजाये हुए जैन यानी बौद्धमतावलम्बी हठ और दुराग्रह को अभी तक नहीं छोड़ते पक्षपात की पगड़ी को सिर पर और खींच २ के बांधते ही जाते हैं यह आधुनिक मत तुम्हारा पीछा तभी छोड़ेगा जब सत् सनातन वेदधर्म का ग्रहण कर पक्षपात की पगड़ी को खूंटी पर रख सर्वव्यापी सर्वशक्तिमान् की शरण लोगे तभी तुम सच्चे तत्त्वज्ञानी होगे, प्रियवर ! इस आधुनिक जैनमत के असत्य ज्ञान को कल्याणकारी समझ क्यों अपना जीवन व्यर्थ गमाते हो ॥

८–प्रमाद ॥

जैनियों का पं० ठाकुरप्रसादजी के विषय मे लिखना अति ही असत्य यानी मिथ्याभाषण है ऐसे असत्य लेखों के लिखने में जैन यानी बौद्धमतावलम्बियों को लज्जा भी नहीं आती यह न ध्यान दिया कि हमारे मिथ्या लेखों को शास्त्रार्थद्रष्टा लोग देखकर कितना पश्चात्ताप करेंगे और हमको झूठे का दादा ठहरावेंगे जो पुरुष एक बात झूठ बोलता है और उसके छिपाने के लिये १०० बात झूठ यानी असत्य भाषण करता है परन्तु असत्य के कारण से अन्त में असत्य ही रहता है इसको अच्छी तरह शास्त्रार्थद्रष्टा लोग जानते हैं कि इन बातों में से एक भी बात शास्त्रार्थ के समय में जैनी पं० ने नहीं की कि यदि जैनी पं० यह कहे कि पं० ठाकुरप्रसाद आर्य नहीं हैं इस बात को सब सज्जन पुरुष जानते हैं कि पं० ठाकुरप्रसादजी ने अपने व्याख्यानो में यह कहा था कि जो आर्य न होगा वह तो गैर आर्य होगा मैं सोने के पत्र पर रजिस्टरी करा सकता हूं कि मैं आर्य हूं, सज्जनो ! देखो यदि आर्य न होते तो आर्यसिद्धान्त के सभासद् क्यों होते बड़े पश्चात्ताप का विषय है कि जब समान संख्या दोनो पक्ष के पंडितो की है तो भी पं० ठाकुरप्रसादजी से क्यो न शास्त्रार्थ किया जब समान समय तक दोनों पक्षों को लिखने और कहने का अधिकार है फिर जैनी महाशयों को क्या भय था यह पं० ठाकुरप्रसादजी का कथन इस बात पर अपने व्याख्यानो में सर्व के ज्ञातार्थ हुआ जब शास्त्रार्थ करके जैनी पं० पेच में पहुंचे तब बहुत पुरुषों ने यह कहा कि तुम्हारा बड़ाभारी अपवाद इस बात से हुआ जो तुम ने पं० ठाकुरप्रसाद से शास्त्रार्थ करना स्वीकृत नहीं किया तब जैन पण्डितो ने उन पुरुषों को यह उत्तर दिया कि पं० ठाकुरप्रसाद आर्य नहीं हैं इससे हमने उनसे शास्त्रार्थ नहीं किया उन पुरुषों ने आकर समाज में कहा जैनियो का संपूर्ण लेख इस विषय का अनेक मिथ्याभाषण की व्याधियो से अभिग्रस्त है और जैन यानी बौद्धम-

तावलम्बियों ने असत्य भाषण ही अपना धर्म समझ रक्खा है, इनके धर्मग्रन्थों का भी यही आशय है कि जैसे कोई वस्तु है और नहीं है और कह भी नहीं सकते कि है या नहीं ऐसे ही असत्य ग्रन्थों के संस्कार प्रबल होने से जैनी महाशयों को मिथ्याभाषण और हठ करने का असाध्य रोग ही होगया है इनके ग्रन्थों में ऐसा असत्य भाषण लिखा है कि विद्वानों को अत्यन्त ही पश्चात्ताप इनके विद्याहीन आचार्यों पर आता है कि कोई प्रमाण किसी वस्तु का अनुमान करके नही लिखा जो मन मे आया अप्रमाण लिख मारा जैसे ४८ कोस का जूंआ और ८ कोस का बिच्छू १६ कोस का कलसा ४० अक्षरों में एक एक पुरुष का आयु जो सहस्रों वर्षों का एक वर्ष ऐसे ही अनेक मिथ्याभाषण इन के ग्रन्थों में है कि जिनको देखकर बुद्धिमानों को अति ही ग्लानि इस आधुनिक मत से होती है ॥

९—प्रमाद ॥

जैनियों ने जो चतुर्वेदी कमलापतिजी के विषय में लिखा है वह सर्वप्रकार असत्य ही है इसको समस्त शास्त्रार्थद्रष्टा पुरुष अच्छे प्रकार जानते हैं कि सभापतिजी का कदापि यह कहना नही था कि हमारा जयपराजय पं० ठाकुरप्रसादजी ही पर है पं० ठाकुरप्रसादजी के व्याख्यानार्थ कहा था कि पांच मिनट शास्त्रार्थ समय में ही से चाहे आर्य पंडितों के ही समय में से लेकर दिया जाय क्योंकि सम्पूर्ण शास्त्रार्थद्रष्टा पुरुषों की आकांक्षा उक्त पं० जी के व्याख्यान सुनने की है इसको सुनकर पराजय मूर्त्ति जैनी बहुत घबराये क्योंकि अन्तिम समय ३० मिनट आर्य्य पंडितों ही का था कि जिसमें इनकी सारी पोलें इनहीं के ग्रन्थों से सुनाई थी कि जिससे बहुत लज्जित हुए और यों कहकर कि हमारी तोहीन होती है सभा से भाग गये फिर पत्र और विज्ञापनों के देने से भी शास्त्रार्थ करने को उपस्थित न हुए, सज्जनो ! इसमें किसका पराजय विदित होता है ॥

१०—प्रमाद ॥

महाशयो ! जैनी पंडितों के प्रमाद की प्रबलता और मिथ्याभाषण का मकर जाल देखियेगा कि पं० छेदालाल के लेख से विदित है कि मैंने पं० भीमसेन से यह कहा कि यह श्लोक हस्ताक्षर करके हमको दे दो क्योंकि इससे हमारे मत पर मिथ्या आक्षेप किया है बड़े पश्चात्ताप का समय है कि आज दीर्घ यानी बहुत समय सत्यार्थप्रकाश को बने होगया है किसी पं० जैनी ने मिथ्या आक्षेप का स्वामीजी

महाराज पर दावा न किया क्या पं० छेदालाल साहब उत्तरायण और दक्षिणायन ध्रुव की यात्रा को चले गये थे; जो अब गाढ़निद्रा से जगे और एक श्लोक पर नाक उठाकर देखने और कहने लगे, प्यारे जैनियो ! तुम्हारे आधुनिक मत का तो खण्डन श्री १०८ स्वामी दयानन्दसरस्वतीजी ने अपने सत्यार्थप्रकाश के १२ वें समुल्लास में खूब प्रकटकर दिखाया यदि ये पोलें जो उक्त समुल्लास में लिखी हैं सत्य नहीं हैं तो दावा तोहीन का क्यों न किया ?, क्या सर्वत्र जैनियों को मोतियाविन्द का रोग हो गया था कि जिससे आजतक न सूझा और बेठिकाने की वेसुरी दो चार बातों को कहकर इन भोले भाले जैनी महाशयों को क्यों ठगते हो और अपने को पंडितों की गणना में कहते हो क्यों इस पंडित शब्द को भी अपने नाम में लगाकर लज्जित करते हो अजी लालाजी आप अपने यथा नाम तथा गुण ही पर संतोष करो दुराग्रह और मिथ्याभाषण के व्यवहार को छोड़ो सदैव सत्यसनातन वातों को ग्रहण करो कि जिससे व्यवहार और परमार्थ सिद्ध होना चारित्र कहाता है अर्थात् जिन मत से भिन्न आचार्य सब सर्वथा अवद्य (निन्दनीय) और उनके निन्दित मतों का त्यागना चारित्र कहाता है । और जिनोक्त तत्वों मे रुचिवाली वाणी प्रियपथ्य और तथ्य कहाती है यह वाणी चारित्र से सम्बन्ध रखती है यही बात इनके सूत्रों से भी सिद्ध होती है कि जिन भिन्न कुगुरु का संग करने से विषैले सर्प का काटना भला है । क्या ही आश्चर्य है कि पं० छेदालालजी ने ऐसे २ सूत्रों को छिपाकर और पूर्वापर अपने मत का विचार न करके केवल वितण्डा किया है। स्वामीजी महाराज ने अवद्य शब्द का अर्थ सब प्रकार निन्दनीय किया है सो जैनमत को पूर्वापर देख के किया है इससे बहुत ठीक है यदि स्वामीजी अनवद्य पाठ समझते तो उसका अर्थ भी वैसा ही करते जब पाठ अनवद्य लिखा और अर्थ अवद्य का किया तो निश्चय है कि यह भूल लेखक की वा छापे की है । क्योंकि इसी पुस्तक में (यान्यनवद्यानि कर्माणि) यहां अनवद्य का अर्थ अनिन्दनीय किया है इससे स्पष्ट हुआ कि चारित्र प्रकरण में अवद्य ही पाठ है जैसे जैनियो की प्रियतथ्य वाणी के विषय मे जैन देवगुरुतत्वज्ञान उपदेशक में लिखा है कि:—

कर्त्ताऽस्ति नित्यो जगतः स चैकः स सर्वगः सन् स्ववशः स सत्यः ।
इमाः कुहेयाः कुविडम्बनाः स्युर्मन्ता न तासामनुशासकस्त्वम् ॥

इस जगत् का कर्त्ता नित्यव्यापक अपने सामर्थ्य मे आच्छादन करनेवाला वह सत्य है यह कुविडम्बना (नीचबुद्धि) त्यागने योग्य हैं उनका मानने वा कहने वाला तू

(जैनी) नहीं है। अर्थात् नित्यव्यापक जगत्कर्त्ता ईश्वर को मानना जैनों का काम नहीं।

जैन पण्डितों की द्वितीय शङ्का यह है कि स्वामी (दयानन्दसरस्वती) जी ने जो सत्यार्थप्रकाश में लिखा है कि "लक्ष्यते येन तल्लक्षणम्" जिससे लक्ष्य जाना जाय उसको लक्षण कहते हैं जैसे आंख से रूप जाना जाता है, सो ठीक नहीं क्योंकि लक्षण का स्वरूप नेत्र को नही कह सकते। इसका उत्तर यह है कि नैयायिकी परिपाटी यह है कि:—

अव्याप्त्यतिव्याप्त्यसम्भवदोषाग्रस्तत्वे सति लक्ष्यस्वरूपबोधकत्वं लक्षणत्वम्।

जिसमें अव्याप्ति अतिव्याप्ति और असम्भव दोष न हो और लक्ष्य पदार्थ का स्वरूप जतानेवाला हो उसको लक्षण कहते हैं। यहां जैसे नेत्र से रूप का बोध होता है इसमें नेत्ररूप लक्षण में अव्याप्ति दोष इसलिये नही कि नेत्ररूप के साथ व्याप्त है अतिव्याप्ति इसलिये नहीं कि नेत्र से रूप भिन्न लक्ष्यमात्र का बोध नहीं होता। नेत्ररूप का ग्रहण असम्भव भी नहीं और लक्ष्यरूप का बोध नेत्र से होता है। इस कारण रूप का लक्षण नेत्र को कहना असङ्गत नहीं है। लक्षण के सामान्य स्वरूप मे शब्द वाक्य सूत्र आदि लक्षण कहे जाते हैं। जैसे प्रमाण शब्द का व्याकरणानुसार यही अर्थ है कि जिससे प्रमेय को जाने निश्चय करें वैसे लक्ष धातु के दर्शन (ज्ञान) अर्थ से गन्धादि विषय ज्ञान के साधन होने से ज्ञानेन्द्रिय लक्षण हो सकते हैं इसमें कोई बाधा नहीं। इसको न समझ के लिखा है तीसरे दिन के शास्त्रार्थ में पं० छेदालाल जैनी ने सत्यार्थप्रकाश पर तीन शङ्का बलपूर्वक की थीं। यद्यपि दूसरे दिनके शास्त्रार्थ में आर्यों के पण्डितों ने कह दिया था श्रीस्वामी दयानन्दसरस्वतीजी हमारे मत के प्रवर्त्तक नहीं हैं किन्तु हमारा सनातन वैदिक मत है स्वामीजी के लेख पर जो कोई आक्षेप होगा वह वैदिक मत पर नहीं समझा जावेगा किन्तु स्वामीजी भी एक आप्त सनातनधर्मोपदेशक थे इसलिये हम लोग उनको वेदोक्त धर्मोपदेशक मानते हैं तुम लोग आर्यों के मत पर जो शङ्का करना चाहो वेद पर करना इस पर जैनियों ने कुछ न ध्यान दिया और इस विचार से कि वेद पर कहने का कुछ सामर्थ्य नहीं तथा स्वा० द० जी के सत्यार्थप्रकाश का खण्डन करें जिससे अन्य आर्य-(हिन्दू) लोग भी आर्यसमाज से तथा सत्यार्थप्रकाशादि से घृणा करेंगे और हमारी प्रशंसा करेंगे तथा बहुत जैन लोग भी सत्यार्थप्रकाशादि से जैन मत के गपोड़े देखर आर्यसमाजस्थ होगये हैं सो सत्यार्थप्रकाश का खण्डन करेंगे तो जैनी लोग सत्यार्थप्र-

काश को देखने से घृणा करेंगे और हमारी प्रशंसा होगी कि हमारे पं० ने सत्यार्थप्रकाश का खण्डन कर दिया, इन तीनों शङ्काओं का उत्तर भी उसी दिन की सभा में यथोचित दे दिया गया था तथापि जैनियों ने अपनी शङ्का और बढ़ाकर छपवाई कि जितना तत्काल नहीं कहा था और हमारी ओर से जो २ कहा गया था सो कुछ नहीं छपाया यह पक्षपात नहीं तो क्या है ! ।

उचित तो यही था कि शास्त्रार्थ मे जो लेखबद्ध विषय हुआ था उतना ही शास्त्रार्थ के नाम से छपाते और विशेष छपाना होता सो अलग पीछे से छपा देते। पर यह काम धर्मात्माओ का है, सब का नहीं । अब सुनिये—सत्यार्थप्रकाश सम्बन्धी तीन शंकाओं में पहिली यह है कि "पृष्ठ ४२९ पं० ३ सर्वथानवद्य योगानां" इसमे स्वामीजी ने अवद्य को अनवद्य लिखा है इस पर पं० छेदालाल तथा अन्य जैनियो ने बड़ा कोलाहल मचाया है कि स्वामीजी ने अज्ञान से वा कपट से शंका कोटि से उठाके तौतातिती को सिद्धान्त कोटि में रख दिया है। इस पर विचार यह है कि वास्तव मे (सर्वथावद्ययोगानां) ऐसा ही पाठ ठीक है क्योंकि (वदितुमयोग्यमवद्यम्) (अवद्यपण्य०) इस सूत्र से पूर्वोक्त अर्थ सिद्ध होता है जो कहने योग्य नहीं हो उसको अवद्य कहते हैं तो उक्त श्लोक का अर्थ यह होगा कि (जो कहने योग्य न हो उसका त्यागचारित्र कहाथा है वह अहिंसादि भेद से पांच प्रकारका है) अब प्रश्न यह है कि अवद्य नाम अयोग्य का क्या अर्थ हुआ तो जैनमत के सब पुस्तकों अर्थात् मुख्य सिद्धान्तों से यही निश्चित है कि जिन मत से भिन्न तत्वों का अनुसन्धान करना और जिन मत से भिन्न आचार्य सब कुगुरु हैं उनका त्याग, यह विद्वान् का दोष नहीं है किन्तु समझने वाले का दोष है पाठ का यह काम है कि जब उनकी समझ में न आवे तो दूसरे स्थलों में देखते हैं जैसे स्वामीजी महाराज ने सत्यार्थप्रकाश के पृष्ठ ६६ में (लक्षणप्रमाणाभ्यां वस्तुसिद्धिः) इसका अर्थ बहुत सरल किया है कि जैसे गन्धवती पृथिवी। जो गन्धवाली है वह पृथिवी है अर्थात् गन्ध पृथिवी का लक्षण है ॥

जैनियों का तृतीय उपालम्भ यह है कि तौतातियों के पूर्वपक्ष को लेकर स्वामीजी ने जैनमत का खण्डन किया है सो ठीक नहीं क्योंकि वह जैनमत नहीं ।

सर्वज्ञो वीतरागादिदोषस्त्रैलोक्यपूजितः ।
यथास्थितार्थवादी च देवोऽर्हन्परमेश्वरः ।
सर्वज्ञो दृश्यते तावन्नेदानीमस्मदादिभिः ।
दृष्टो न चैकदेशोऽस्ति लिङ्गं यो वानुमापयेत् ॥

इन दोनों वचनों को स्वामीजी ने जैनमत के वर्णन में लिखा है। इनमें से पहिला श्लोक छेदालाल जैन ने शास्त्रार्थ में पढ़ा था और कहा कि हम सर्वज्ञ ईश्वर को मानते हैं और द्वितीय श्लोक तौताततिती नास्तिकशिरोमणि का है। इसको छेदालाल ने अपना प्रतिपक्षी कहा है सो यह ठीक नहीं क्योंकि तौताततिती यद्यपि किसी अंश में अर्हन्तदेव का भी खण्डन करता है इसीलिये माधवाचार्य्य ने सर्वदर्शनसंग्रहस्थ जैनमत में तौताततिती को पूर्वपक्ष में लिया है परन्तु मुख्य कर तौताततिती वैदिकमतानुयायियों का प्रतिपक्षी है अर्थात् नित्य सर्वज्ञ ईश्वर को वेद मतानुयायी लोग मानते हैं उसी का (न चागमविधिः कश्चिन्नित्यसर्वज्ञबोधकः) इत्यादि वचनों से खण्डन किया है जैनी लोग जिस अर्हन्देव को सर्वज्ञ मानते हैं उसको वे नित्य नहीं कह सकते क्योंकि उनका मुख्य सिद्धान्त यही है कि अनादिसिद्ध सनातन ईश्वर कोई नहीं किन्तु अर्हन्देव वा आदिदेव जब उत्पन्न हुए तब सम्यग्ज्ञानादि से सिद्ध होगये उन्हीं को सर्वज्ञ ईश्वर मानते हैं सो बीच में उत्पन्न होने वाला सर्वज्ञ भी नहीं हो सकता क्योंकि उसकी उत्पत्ति से पहिले अपने पिता पितामहादि का हाल नहीं जान सकता और सिद्ध होने पहिले बाल्यावस्था का अपना ही चरित्र नहीं जान सकता और सर्वज्ञ उसी को कह सकते हैं जो अतीतानागत वर्त्तमान सब समय में एकरस कूटस्थ व्याप्त हो के सब को जाने सो ऐसा ईश्वर आर्य्यों का मन्तव्य है जैनादि का नहीं लोगों को बहकाने के लिये जैसे ईसाई लोग ईश्वर का अनेक प्रकार वर्णन करते २ अन्त मे ईसामसीह पर तान तोड़ते है ऐसी ही कुछ चाल जैनियो की है मानते तो एक बीच के उत्पन्न हुए शरीरधारी को हैं उसके विशेषण सर्वज्ञादि हों। यह असम्भव है इसीलिये तौताततिती ने बीच में हुए भी किसी को ईश्वर नहीं माना इससे वह नास्तिकशिरोमणि और जैनियों का बड़ा भ्राता है अर्थात् अनादिसिद्ध सनातन सृष्टिकर्त्ता ईश्वर के न मानने में जैनी और तौताततिती दोनो एक ही हैं इसी अभिप्राय से स्वामीजी ने दोनों को साथ ही लिखा है इस से जैनो का आक्षेप ठीक नहीं है ॥

११—प्रमाद ॥

सज्जनो ! इन जैनियों के मिथ्याभाषण की अधिकता देखियेगा कि जिसके लिखने से ये प्रमाद की गठरी ही जचते है, जैनी पं० लिखते है कि आर्यों की असमर्थता तो पहिले से ही शास्त्रार्थ विषय मे थी आज शास्त्रार्थ के प्रारम्भ समय से तो ज्ञात ही हो गई कि प० देवदत्तजी की जगह पं० ठाकुरप्रसाद शास्त्रार्थ करेंगे,

न्यायशील सज्जनो ! इसको क्या असमर्थता का कारण कोई विद्वान् अनुमान प्रमाण से समझ सकता है, देखिये जब कोई पुरुष किसी विशेष कारण या रोगादि या समानसंख्या की गणना से किसी कार्य को न करे तो क्या असमर्थ समझा जायगा कदापि नहीं, ख्याल कीजिये जब समान संख्या दोनों पक्ष के पण्डितों की है और समान ही समय तक उभयपक्ष को कहने का अधिकार है फिर इससे तो असमर्थता आर्यों की कोई न्यायशील नहीं कह सकता, यदि जैनियों की असमर्थता नहीं थी तो आर्यों के प्रश्न का उत्तर क्यों नहीं दिया और मतविषयक शास्त्रार्थ क्यों न किया, इस से जैनी महाशयो ! तुम्हारा पराजय तो सर्वजगत् तथा सर्वविद्वानों को तुम्हारे लेख ही से विदित हो गया कि न तो साधारण नियम जो शास्त्रार्थ समय अवश्य माननीय हैं उनको और न मतविषयक शास्त्रार्थ करना, अब तुम्हारे इन असंगत लेखों को कोई विद्वान् प्रमाण न करेगा ।

१२—प्रमाद ॥

शास्त्रार्थ बन्द होने में जैनियों की असमर्थता ही प्रगट होती है यदि ये असमर्थ न होते तो क्या पत्र और विज्ञापनों से शास्त्रार्थ न करते और उपद्रव का मिस करके शास्त्रार्थ बन्द करना यह जैनियों की कातरता नहीं है ? यह इनके लेख ही से विदित है कि धन्य है ऐसे न्यायमार्गी सभापति को कि जिन्होंने दोनों पक्ष को समदृष्टि से देखा और न्याय मार्ग पर आरूढ़ होकर न्याय किया जब सर्वोत्तम न्यायकर्त्ता श्रीमान् चतुर्वेदी ज्वालाप्रसादजी और प्रबन्धकर्त्ताओं को कहा और प्रबन्ध की उत्तमता यहां तक लिखी कि नियत प्रबन्ध से इधर उधर न चलने दिया बड़े पश्चात्ताप का समय है इन जैनी महाशयो की बुद्धि पर कि ऐसे न्यायशील प्रबन्धकर्त्ताओं के न्याय में भी उपद्रव होने का दोष आरोपण करने लगे तो जो प्रबन्धकर्त्ता अपने न्याय से किसी पक्ष को इधर उधर नहीं चलने देते थे फिर ऐसे न्यायशील प्रबन्धकर्त्ताओं के संमुख अन्याय और उपद्रव का होना किस प्रकार से सम्भवित है इससे जैनियों की पूर्ण असमर्थता सिद्ध होती है और प्रमाद की प्रबलता देखियेगा कि श्रीयुत चतुर्वेदी राधामोहनादि और भी प्रतिष्ठित रईसों ने उपद्रव होता जान शास्त्रार्थ होना बन्द किया, इन असंगत लेखों के लिखने मे जैनी महाशयो को लज्जा नहीं आती जब यह ठीक यानी सत्य ही था तो सर्व प्रकार रईसों के हस्ताक्षर क्यों न करा लिये, जो पत्र शास्त्रार्थ बन्द होने के विषय मे छापा है वह तो जैनी महाशयो के लेख ही से अप्रमाण सिद्ध होता है जब पत्र पांच की राय से और हस्ताक्षर केवल सभापति ही के हैं कब सम्पूर्ण प्रबन्धकर्त्ताओं

का माना जा सकता है जबतक दोनों पक्ष के प्रबन्धकर्त्ता अपनी राय पर हस्ताक्षर न करें कब समस्त प्रबन्धकर्त्ताओं की ओर से माननीय हो सकता है, यदि यह लेख सभापतिजी ने प्रबन्ध करने की अपने में असमर्थता देख दिया तो पांच की राय प्रकट करना उचित न था केवल अपनी राय प्रकट कर सकते थे, मेरी अल्पबुद्धि में तो इस लेख से भी जैनियो की असमर्थता और अल्पज्ञता विदित होती है सर्व सज्जनों की सेवामें जैन आधुनिक मत की आधुनिकता प्रकट करता हूं आजतक आर्यावर्त्त देश में प्राचीन समय से सर्व ऋषि मुनि और सम्पूर्ण विद्वान् चार वेद उपवेद और ६ शास्त्रों की प्राचीनता ही (अन्यदेशी तक भी यानी लन्दन और जर्मनादि) विदित करते हैं और जैनी महाशय इन सतशास्त्रो को मानते नहीं जब प्राचीन और अनुकूल बातों ही को नहीं ग्रहण करते फिर आधुनिकता तो इनकी सर्व पर विदित होगई इनके ग्रन्थो का किसी सत्शास्त्र में नाम तक नहीं और इन के प्रामाणिक ग्रन्थो में पुराणादिक तक के नाम और कथा लिखी हैं जब पुराण वाले भी वेद को सनातन अनादि मानते है फिर तो जैनमत बहुत ही नवीन और आधुनिक सिद्ध होगया अब हम जैनियो की अविद्वत्ता सिद्ध करते है यदि ये प्राचीन और विद्वान् होते तो पाणिनि ऋषिकृत व्याकरण और गोतम ऋषिकृत न्याय कदापि नहीं मानते जो कुछ ग्रन्थ इनके आचार्यों ने बनाये हैं इधर उधर की बातें लेकर और मनमानी बुद्धि लड़ाकर ऐसी कपोलकल्पित असत् गाथा लिख मारीं कि जिससे यह सूझा कि यह जाल शीघ्र कट जायगा इससे अपने शिष्य और मतावलम्बियों को यही शिक्षा की कि अन्य मतवालो को अपने ग्रन्थ न सुनाना न दिखाना यह आधुनिक और असङ्गत कथाओं का कारण क्या नहीं सिद्ध होता है जब इनके ग्रन्थों में अन्य मतवालों के साथ न बातचीत करना और न उनका कुछ सहाय करना और न जीवरक्षा की वस्तुये बनाना इत्यादि निषेध लिखा है जैसा कुआँ बाग तालाब आदि फिर यह पूर्ण जीवरक्षक कैसे सिद्ध हो सकते हैं हां यह हम कह सकते हैं कि और आधुनिक मतो से इन मे जीवरक्षा कुछ विशेष है, कहांतक इनकी असङ्गत बातें और आधुनिकता लिखें इनकी असत् गाथाओं का तो वारापार नही इससे सज्जनों के विलोकनार्थ कुछ विदित करके लेखनी को विश्राम देता हूं और सज्जनो की सेवामे प्रतिज्ञा करके कहता हूं कि इनका सम्पूर्ण लेख जो शास्त्रार्थ फ़ीरोज़ाबाद में छपा है अनेक पक्षपात और मिथ्याभाषण की व्याधियो से ग्रस्त है इसको कोई सज्जन माननीय नहीं कह सकता है। इति ॥

सर्व सज्जनों का कृपाभिलाषी—

गङ्गारामवर्म्मा, मन्त्री–आर्य्यसमाज,

फ़ीरोज़ाबाद.

॥ ओ३म् ॥

वेदविरुद्धमतखण्डनोऽयङ्ग्रन्थः

श्रीमत्स्वामिदयानन्दसरस्वतीनिर्मितः

तच्छिष्यभीमसेनशर्म्मकृतभाषानुवादसहितः

अजमेरनगरे

वैदिकयन्त्रालये मुद्रितः

सम्मतिरत्रवेदमतानुयायिपूर्णानन्दस्वामिनः

संवत् १९६२ वि०

भाद्रपद शुक्ल

चतुर्थवार छपा
१०००

डाकव्ययसहित
मूल्य =)॥

ओ३म्

अथ वल्लभादिमतस्थान्प्रति प्रश्नाः खण्डनं च ।

१—(प्र०) कोऽयं वल्लभोनाम कश्चास्यार्थः ? ॥

२—(उ०) वल्लभोऽस्मदाचार्यः प्रियत्वगुणविशिष्टोऽस्यार्थः ॥

३—(प्र०) किमाचार्यत्वं नाम भवन्तश्च के ? ॥

४—(उ०) गुरुराचार्यः, वयं वर्णाश्रमस्थाः ॥

५—(प्र०) किं गुरुत्वमस्ति ? ॥

६—(उ०) उपदेष्टृत्वमिति वदामः ॥

७—(प्र०) स वल्लभो धर्मात्मनां विदुषां प्रिय उताधर्मात्मानां मूर्खाणां च ? ॥

८—(उ०) नाद्यः कुतो भवतां सर्वेषान्तु धर्माचरणविद्यावत्त्वाभावात् । किन्तु कश्चित्तादृशोऽस्ति । न चरमोऽधर्मात्मनां मूर्खाणां तत्र प्रीत्या स एवाश्रेष्ठः स्यात् स्वजाति

१—(प्र०) वल्लभनामक पुरुष कौन है और इस शब्द का अर्थ क्या है ?

२—(उ०) वल्लभ हमारा आचार्य्य है इस वल्लभ शब्द का अर्थ प्रीति गुणयुक्त प्यारा है ॥

३ (प्र०) आचार्यपन क्या है और आप कौन हैं ? ॥

४—(उ०) गुरु को आचार्य्य कहते हैं और हम लोग वर्णाश्रम धर्मस्थ हैं ॥

५—(प्र०) गुरुपन क्या वस्तु है ? ॥

६—(उ०) उपदेश करना इस को हम लोग गुरुपन कहते हैं ॥

७—(प्र०) वह वल्लभनामी पुरुष धर्मात्मा विद्वानों को प्रिय है अथवा अधर्मी और मूर्खों को प्रिय है ? ॥

८—(उ०) आद्य पक्ष अर्थात् धर्मात्मा विद्वानों को वह प्रिय नहीं हो सकता क्योंकि आप सब लोगों का धर्माचरण और विद्यावान होना संभव नहीं किन्तु कोई वैसा है । द्वितीयपक्ष इसलिये ठीक नहीं कि वल्लभ मूर्खों को प्रिय हो तो उस में मूर्खों की प्रीति होने से वह ही अश्रेष्ठ समझा जावे क्योंकि अपने २ सजातीय में प्रीति होने का प्रवाह प्रसिद्ध है अर्थात्

परत्वप्रवाहस्य विद्यमानत्वात्। अन्यच्च सजीवान्प्रति सर्वेषां प्रीतेः सत्त्वान्मृतांश्च प्रति प्रीतेरभावान्नैष्फल्याच्च तत्र वल्लभत्वमेव दुर्घटम्। मृतस्याचार्यत्वकरणासंभवात्। "समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठं गुरुं समुपगच्छेदिति" श्रुतेर्वर्त्तमानाभिप्रायत्वात्। "उपनीय तु यश्शिष्यम्वेदमध्यापयेद् द्विजः। सकल्पं सरहस्यं च तमाचार्य्यम्प्रचक्षत" इति मनुमतविरोधात् ॥ मरणानन्तरमध्ययनाऽध्यापनयोरशक्यत्वात् शरीरमात्रसंबन्धाभावाच्चेति युक्त्या तस्मिन्नाचार्य्यत्वमेवासङ्गतम् ॥ तथा च मृतम्प्रति प्रीतिरशक्या निष्फला च ॥ तत्र प्रियत्वगुणविशिष्टवचनत्वमप्यसङ्गतन्तस्य भ्रान्तिनिष्ठत्वात् ॥

९—(प्र०) किङ्गुरुत्वं सत्योपदेष्टृत्वमाहोस्विदसत्योपदेष्टृत्वञ्च ? ॥

१०—(उ०) नादिमः कुतो भवत्सु श्रोत्रियब्रह्मनिष्ठत्वासत्त्वादस्तिचेन्न सङ्गच्छते विषयसेवायां प्रीतेर्दर्शनात् ॥ "अर्थकामेष्वसक्तानां धर्मज्ञानं विधीयत" इति मनुसाद्यविरो-

---

विद्वानों की विद्वानों में और मूर्खों की मूर्खों में प्रीति विशेष होती है। और भी देखो कि जीवितों में सब की प्रीति होने, मरे हुओं में न होने और मरों में प्रीति करना भी निष्फल होने से उस पुरुष में वल्लभत्व अर्थात् प्रियपन होना ही नहीं घट सकता और मरे हुए को गुरु करना भी असम्भव है। वेद में लिखा है कि वेदवेत्ता ब्रह्मज्ञानी गुरु के पास हाथ में समिध लेके जावे इस से सिद्ध है कि मरे हुए के पास में समिध ले के जाना असम्भव है और "जो यज्ञोपवीत करा के कल्पसूत्र और वेदान्त सहित शिष्य को वेद पढ़ावे उस को आचार्य कहते है" इस मानवधर्मशास्त्र की सम्मति से भी वल्लभ का आचार्यत्व होना विरुद्ध है मरने पश्चात् पढना पढाना आदि जो आत्मधर्म है वे नहीं हो सकते क्योंकि इन धर्मों का शरीरमात्र से सम्बन्ध नहीं है इस प्रकार की युक्तियों से वल्लभ को आचार्य मानना ही असङ्गत है। इसी कारण मरे से प्रीति करना अशक्य और निष्फल है और वल्लभ के भ्रान्तिग्रस्त होने से उस को प्रियत्व गुणयुक्त कहना भी असङ्गत है ॥

९—(प्र०) गुरुपन क्या वस्तु है ? क्या सत्योपदेश करना वा असत्य उपदेश करना भी गुरुपन कहाता है ? ॥

१०—(उ०) प्रथम पक्ष अर्थात् सत्योपदेश करना रूप गुरुत्व नहीं घटता क्योंकि सत्योपदेष्टा गुरु तुम में इस से नहीं हो सकते कि आप लोगों में वेदवेत्ता और ब्रह्मज्ञानी जन नहीं हैं यदि कहो कि है तो तुम्हारा कहना असगत है क्योंकि तुम लोगों की प्रीति विषयों की सेवा में प्रसिद्ध दीखती है। धर्मशास्त्र में कहा है कि अर्थ और

धाद्भवतामर्थकामेष्वेवासक्तेः प्रत्यक्षत्वात्स्त्रीषु धनेषु चात्यन्तप्रीतिर्विद्यमानत्वान्मरणसमयेपि स्वशिष्याणां वक्षःस्थलस्योपरि पादं स्थापयित्वा धनादीनां पदार्थानां संग्राहकत्वाद्यथा मृतकस्य शरीरस्य वस्त्राऽऽभूषणादीन्पदार्थान् कश्चिद्गृह्णाति भवतान्तेन तुल्यत्वाच्च ॥ नान्त्यः ॥ असत्योपदेशस्यानभिधानाद्द्वयोर्दुःखफलस्य प्रापकत्वाच्च ॥ स्वपुत्रादीन्प्रति पितुर्गुरुत्वाऽधिकारादन्यान्प्रतिगुरुत्वाभिमानानभिधानाद्भवत्सु गुरुत्वस्य विरहएवेत्यवगन्तव्यम् ॥ "निषेकादीनि कर्माणि यः करोति यथाविधि ॥ सम्भावयति चान्नेन स विप्रो गुरुरुच्यत" इति मनुसाक्ष्यविरोधादविवाहितस्त्रियां वीर्यनिषेकस्य पापफलत्वाच्चेति ॥ भवन्तो वर्णाश्रमस्थाश्चेत्तर्हि वेदोक्तानि वर्णाश्रमस्थकर्त्तव्यानि कर्माणि कुतो न क्रियन्ते क्रियन्ते चेन्मूर्त्तिपूजनं कण्ठीधारणन्तिलक समर्पणं वेदानुक्तमंत्रोपदेशञ्च त्यजन्तु नोचेद्वेदोक्तधर्माचरणविरोधाद्भवन्तो वर्णाश्रमस्था एव नेति मन्तव्यम् ॥

काम में जो आसक्त नहीं उन के लिये धर्मज्ञान का विधान है । इस से विरुद्ध आप लोगों की आसक्ति द्रव्य और काम चेष्टा ही में प्रसिद्ध है। स्त्रियों और धनों में तुम्हारी अत्यन्त प्रीति प्रत्यक्ष विद्यमान है और मरण समय में भी अपने शिष्यों की छाती पर पैर रख कर धनादि पदार्थों का संग्रह करते हो और महाब्राह्मण वा चाण्डालादि के तुल्य मृतक के वस्त्र आभूषणादि पदार्थों को लेते हो इस से महाब्राह्मण के तुल्य हुए । और द्वितीय पक्ष असत्योपदेश करने से भी वल्लभगुरु नहीं हो सकते क्योंकि असत्योपदेश से गुरु मानना शास्त्र विरुद्ध और दोनों गुरुशिष्य दुःख फलभागी होते हैं । अपने पुत्रों के प्रति गुरु होने का मुख्य अधिकार पिता को है । अन्य किसी का स्वयमेव गुरु बन बैठने का धर्म शास्त्र में विधान न होने से आप लोगों में गुरुत्व कदापि संघटित नहीं हो सकता । धर्मशास्त्र में कहा भी है "जो विधिपूर्वक गर्भाधानादि कर्मों को करता और अन्नादि से पालन करता है वह ब्राह्मण गुरु कहाता है" इस से अन्य को गुरु मानना विरुद्ध है । और अविवाहित स्त्री में गर्भाधान करना पाप है इस से मुख्य कर पिता ही गुरु हो सकता है ! यदि आप लोग वर्णाश्रमधर्मस्थ अपने को मानते हैं तो वर्णाश्रम के कर्त्तव्य वेदोक्त कर्म क्यों नहीं करते ? यदि करते हो तो पाषाणादि मूर्त्तिपूजन, कण्ठी बांधना, तिलक लगाना, समर्पण कराना और वेद में न कहे हुए मंत्रों का उपदेश करना छोड देवो यदि ऐसा नहीं करते तो वेदोक्त वर्णाश्रमधर्म के आचरण से विरुद्ध होने से आप लोग वर्णाश्रमधर्मस्थ नहीं हो सकते यह निश्चय जानना चाहिये ॥

११–(प्र०) भवन्तो गुरवः शिष्या मध्यस्था वा ?

१२–(उ०) गुरवश्चेदर्थज्ञानपूर्वकान्वेदान्पाठशालाङ्कृत्वा कुतो नाध्यापयन्ति ? शिष्याश्चेत्कथं न पठन्ति ? मध्यस्थाश्चेद्ब्राह्मणाचार्याभिमानो भवत्सु व्यर्थोऽस्तीत्यवगन्तव्यम् ॥

१३–(प्र०) भवन्तो वेदमतानुयायिनस्तद्विरोधिनो वा ? ॥

१४–(उ०) यदि वेदमतानुयायिनस्तर्हि वेदोक्तविरुद्धं स्वकपोलकल्पितं वल्लभसम्प्रदायमन्यं वा किमर्थं मन्यन्ते ? वेदविरोधिनश्चेन्नास्तिकत्वं शूद्रत्वञ्च किमर्थं न स्वीक्रियते ? ॥ "नास्तिको वेदनिन्दकः" "योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम् ॥ स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशुगच्छति सान्वयः" इति मनुसाक्ष्यविरोधात् ॥ पुनर्हि जन्ममरणवतो देहधारिणः कृष्णादीञ्जीवानीश्वरत्वेन किमर्थं व्यवहरन्ति ? नो चेन्मन्दिरे जड़मूर्त्तिस्थापनङ्कृत्वा घण्टादिनादञ्चाज्ञानिनां मिथ्योपदेशव्याजेन धनादीन्पदार्थान्किमर्थमाहरन्ति ? ॥

१५–(प्र०) भवन्तः स्वस्मिन्कृष्णत्वं मन्यन्त उत मनुष्यत्वम् ? ॥

११–(प्र०) आप लोग गुरु शिष्य वा मध्यस्थ हो ? ॥

१२–(उ०) यदि गुरु हो तो पाठशाला कर अर्थज्ञानपूर्वक वेदों को क्यों नहीं पढ़ाते ? यदि शिष्य हो तो क्यों नहीं पढ़ते ? । यदि मध्यस्थ हो तो आप में ब्राह्मण और आचार्य होने का अभिमान व्यर्थ है यह निश्चय जानना चाहिये ॥

१३–(प्र०) आप लोग वेदमतानुयायी हो वा वेदमत के विरोधी हो ? ॥

१४–(उ०) यदि वेदमतानुयायी हो तो वेदविरुद्ध अपने कपोलकल्पित वल्लभ वा अन्य संप्रदाय को क्यों मानते हो ? । यदि वेदविरोधी हो तो अपने को नास्तिक और शूद्रकक्षा में क्यों नहीं मानते ? यही धर्मशास्त्र में लिखा है कि "वेदनिन्दक ही नास्तिक होता है" और "जो वेद को न पढ़ के अन्य ग्रन्थों में परिश्रम करता है वह अपने कुटुम्बसहित जीवते ही शूद्र हो जाता है" इस से नास्तिक और शूद्रकक्षा के योग्य हो ! फिर जन्मने मरने वाले श्रीकृष्णजी आदि देहधारी जीवों में ईश्वर का भाव का व्यवहार क्यों करते हो ? यदि कहो कि हम श्रीकृष्णादि ईश्वर नहीं मानते तो मन्दिरों में उनकी जड़मूर्त्ति स्थापन और घण्टादि बजा कर उपदेश के छल से अज्ञानियों के धनादि पदार्थ क्यों हरते हो ? ॥

१५–(प्र०) आप लोग अपने में कृष्णपन की भावना करते हैं वा मनुष्यपन की ? ॥

१६—(उ०) कृष्णत्वं मन्यन्ते चेद्यादवक्षत्रियाभिमानित्वं कुतो न स्वीक्रियते तादृशः पराक्रमो भवत्सु कुतो न दृश्यते कृष्णस्तु परमपदं प्राप्तो भवन्तः कथञ्जीवनवन्तश्च ॥ मनुष्यत्वं चेत्तर्हि स्वोत्तमाभिमानस्त्यज्यताम् ॥

१७—(प्र०) भवन्तो वैष्णवा उतान्ये वैष्णवाश्चेत्कीदृगर्थो वैष्णवशब्दस्य स्वीक्रियते ? ॥

१८—(उ०) विष्णोरयं भक्तो वैष्णव इति वदाम इति चेन्नैवशक्यन्तस्येदमिति सूत्रस्य सामान्यार्थे वर्त्तमानत्वाद्विष्णोरयमित्येतावानर्थो ग्रहीतुं शक्यो विशेषार्थग्रहणस्य नियमाभावात् ॥ यथा भवद्भिर्भक्तशब्दो गृहीतस्तथाविष्णोरयं शत्रुः पुत्रः पिता प्रभावशिष्यो गुरुश्चेत्यादयोऽर्था अन्येनापि ग्रहीतुं शक्या अतो भवत्कृतोऽर्थोऽनुचितः ॥

१९—(प्र०) भवद्भिर्विष्णुः कीदृशो गृहीतः ॥

२०—(उ०) गोलोकवैकुण्ठवासी चतुर्भुजो द्विभुजो लक्ष्मीपतिर्देहधारीत्यादिर्वेति वदाम इति चेद् व्यापकत्वं त्यज्यताम् ॥ चतुर्भुजादिकं मन्यते चेत्सावयवत्वमनित्यत्वञ्च

१६—(उ०) यदि अपने को कृष्ण मानते हो तो यादव क्षत्रियों के युद्धादि सब कामों को क्यों नहीं ग्रहण करते ? श्रीकृष्णजी के सदृश पराक्रम आप लोगों में क्यों नहीं दीख पड़ता ? । श्री कृष्णजी तो परमपद को प्राप्त होगये आप लोग कैसे जीवते बने हो ? और यदि अपने को मनुष्य मानते हो तो अपनेको उत्तम मानने का अभिमान छोड़ देओ ॥

१७—(प्र०) आप लोग वैष्णव हो वा अन्य ? । यदि वैष्णव हो ता वैष्णव शब्द का अर्थ कैसा स्वीकार करते हो ? ॥

१८— (उ०) यदि कहते हो कि विष्णु का भक्त वैष्णव है तो ठीक नहीं क्योंकि व्याकरण के (तस्येदम्) इस सूत्र से विष्णु का सम्बन्धी रूप सामान्य अर्थ ग्रहण होता है भक्तिविशेष रूप अर्थ लेने में कोई नियम नहीं जैसे आप लोगों ने विष्णु का सम्बन्धी भक्त रूप अर्थ का ग्रहण किया वैसे कोई विष्णु शब्द के शत्रु, पुत्र, पिता, प्रभाव, शिष्य, गुरु आदि अर्थों का ग्रहण कर शत्रु आदि को भी वैष्णव कहसकता है । इसलिये आप लोगों का कल्पित अर्थ ठीक नहीं हो सकता ॥

१९—(प्र०) आप लोगों ने विष्णु को किस प्रकार का समझा है ? ॥

२०—(उ०) यदि गोलोक, वैकुण्ठ, का निवासी, चतुर्भुज द्विभुज, लक्ष्मी का पति देहधारी कहते हो तो व्यापक होना छोड़ो यदि चतुर्भुजादि आकृति वाला मानते

स्वीक्रियतामीश्वरत्वञ्च त्यज्यताम् ॥ कुतः संयोगमन्तरासावयवत्वमेव न सिद्ध्यति संयोगश्चानित्यस्तस्माद्भिन्नएवेश्वर इति स्वीकारे मङ्गलन्नान्यथा। ईश्वरस्य सावयवत्वग्रहणं वेदविरुद्धमेव। "सपर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरꣳशुद्धमपापविद्धमित्यादि" श्रुतिविरोधात् ॥

२१-(प्र०) कण्ठीतिलकधारणे मूर्त्तिपूजने च पुण्यं भवत्युतापुण्यम् ? ॥

२२-(उ०) पुण्यं भवति न च पापमिति ब्रूमः ॥ स्वल्पकण्ठी तिलकधारणे मूर्त्तिपूजने च पुण्यं भवति चेत्तर्हि कण्ठीभारधारणे सर्वमुखशरीरलेपने पृथिवीपर्वतपूजने च महत्पुण्यं भवतीति मन्यताङ्क्रियताञ्च ॥ तत्र वेदविधिप्रतिष्ठाया अभावान्न क्रियत इति जल्पामः ॥ वेदेषु तु खलु कण्ठीतिलकधारणस्य पाषाणमूर्त्तिपूजनस्य च लेशमात्रोपिविधिः प्रतिष्ठा च न दृश्यते । अतोभवत्कथनं व्यर्थमेव ॥

२३-(प्र०) किं प्रतिष्ठात्वन्नाम ? ॥

२४-(उ०) पाषाणादिमूर्त्तिषु प्राणादीनाहूय तत्र स्थापनमिति ब्रूम इति नैवं

हो तो सावयव उत्पत्ति धर्मवाला अनित्य मानो और उस में ईश्वरत्व छोड़ो । क्योंकि संयोग के विना सावयव होना नहीं सिद्ध होता और संयोग अनित्य है इस से संयोग वियोग वाले से भिन्न को ईश्वर मानने में ही कल्याण है अन्यथा नहीं और ईश्वर को सावयव मानना वेद विरुद्ध ही है । वेद में कहा है कि ईश्वर शरीर छेदन और नाड़ी आदि के बन्धन से रहित शुद्ध निष्पाप सर्वत्र व्यापक है इससे तुम्हारा कहना विरुद्ध है ॥

२१—(प्र०) कण्ठी तथा तिलक धारण और मूर्त्ति के पूजने में पुण्य होता है वा अपुण्य ?

२२-(उ०) पुण्य होता है पाप नहीं ऐसा कहते हो सो ठीक नहीं क्योंकि यदि थोड़े कंठी तथा तिलक के धारण और मूर्त्तिपूजन में पुण्य होता है तो बहुत कंठियों का भार लादने चन्दन से सब मुख और शरीर के लेपन करने तथा सम्पूर्ण पृथिवी और पर्वतों के पूजने में बड़ा पुण्य होता है ऐसा मानो और करो । यदि कहो कि पृथिवी और पहाड़ के पूजने के लिये वेद में प्रतिष्ठा का विधान न होने से नहीं करते तो वेदों में कंठी तिलकधारण और पाषाणमूर्त्तिपूजन का लेशमात्र भी विधान नहीं और न प्रतिष्ठा का कहीं नाम है इस लिये आपका कथन व्यर्थ है ॥

२३-(प्र०) प्रतिष्ठा करना क्या वस्तु है ? ॥

२४—(उ०) यदि कहते हो कि पाषाण आदि की मूर्त्तियों में वेदमन्त्रद्वारा प्राण आदि का आह्वान कर स्थापन करना प्रतिष्ठा है तो यह कहना ठीक नहीं क्योंकि

शक्यं वक्तुम् ॥ कथं प्राणादीनान्तत्कर्मणान्तत्रादर्शनात् यदि तत्र प्रणादयो वसेयुस्तर्हि गमनभाषणभोजनमलविसर्जनादीनि कर्माणि कुतो न दृश्यन्ते? तांश्च कथं न कुर्वन्ति? यदि प्राणादीनां यत्र कुत्र स्थापने शक्तिरस्ति चेत्तर्हि मृतकशरीराणां मध्ये प्राणादीन् स्थापयित्वा कुतो न जीवयन्ति? भवतामनेनैव महान् धनलाभः प्रतिष्ठा च भविष्यति ॥ किञ्च पाषाणादिमूर्त्तिनाम्मध्ये प्राणादीनाङ्गमनागमनयोरवकाश एव नास्ति न नाड्यश्छिद्राणि च। मृतकशरीराणां मध्ये तु यथावत्सामग्री वर्त्तत एव प्राणादिभिर्विना दाहादिकाः क्रिया जनै क्रियन्ते यदा भवन्तः प्राणादीनान्तत्र स्थापनङ्कुर्युस्तदा कस्यापि मरणमेव न भवेदनेन महत्पुण्यम्भविष्यति तस्माच्छीघ्रमेवेदङ्कर्म कर्त्तव्यमिति निश्चेतव्यम् ॥ यदि कश्चिन्मृतं शरीरञ्जीवयेत्तादृशो मनुष्यो न भूतो न भविष्यतीति वयं जानीमः ॥ कुत ईश्वरस्य नियमस्यान्यथाकरणे कस्यापि सामर्थ्यन्न जातन्न भविष्यतीत्यवगन्तव्यम् ॥ तद्यथा जिह्वयैव रसज्ञानम्भवति नान्यथेतीश्वरनियमोऽस्ति ॥ एतस्यान्यथाकरणे कस्यापि यथा सामर्थ्यन्नास्ति तथा सर्वेष्वीश्वरकृतेषु नियमेष्विति बोध्यम् ॥ ईश्व-

---

प्राण आदि और उन की क्रिया मूर्त्तियों में नहीं दीख पड़ती जो उन मूर्त्तियों में प्राण वा इन्द्रिय रहते तो चलना, बोलना, खाना, मलमूत्र त्याग करना आदि कर्म क्यों नहीं दीख पढ़ते? और वे मूर्त्तियां उन कामों को क्यों नहीं करती? यदि प्राणादिकों को जहां कहीं स्थापन करने की शक्ति तुम लोगों में है तो मृतक शरीरों के बीच प्राणादि को स्थापन कर क्यों नहीं जिला देते? केवल इसी एक कर्म से तुम को बहुत धन की प्राप्ति और प्रतिष्ठा होगी और यह भी विचारो कि पाषाणादि मूर्त्तियों में तो प्राणादि के जाने आने का अवकाश ही नहीं न नाड़ी और इन्द्रिय छिद्र हैं और मृतक शरीरों में तो सब अवकाश नाड़ी और इन्द्रियों के छिद्र आदि सामग्री विद्यमान ही रहती है केवल प्राणादि के न रहने से वे शरीर जला दिये जाते है सो जब आप लोग उन शरीरों में आह्वान कर प्राणादि को स्थित कर देओ तब तो किसी का मरण ही न होवे? इससे बड़ापुण्य होगा इसलिये शीघ्र ही निश्चय कर यह कर्म करना चाहिये। हम जानते है कि यदि कोई मरे हुए को जिला देवे ऐसा मनुष्य न हुआ न होगा क्योंकि ईश्वर के नियम के अन्यथा करने मे किसी का सामर्थ्य न हुआ न होगा यह निश्चय जानना चाहिये। जैसे जीभ से ही रस का ज्ञान हो सकता है अन्य इन्द्रिय से नहीं यह ईश्वरकृत नियम है इस के अन्यथा करने में जैसे किसी का सामर्थ्य नहीं है वैसे ही ईश्वर के किये सब नियमों में जानना चाहिये। ईश्वर ने जो पदार्थ जड़ ब-

रेण ये जडाः पदार्था रचितास्ते कदाचिच्चेतना न भवन्ति तथा चेतना जडा. कदाचिन्नैव भवन्तीति निश्चयः ॥ ईश्वरः सर्वव्याप्यस्त्यतः पाषाणादिमूर्त्तिमध्येप्यस्ति पुनस्तत्पूजने को दोषः खण्डनञ्च किमर्थं क्रियते ? ॥ एवञ्जानन्ति चेत्तर्हि पुष्पत्रोटनञ्चन्दनघर्षणन्नमस्कारञ्च किमर्थं कुर्वन्ति ? कुतःसर्वत्रेश्वरस्य व्यापकत्वात् ॥ नोचेदन्यघृणितपर्थानाञ्च पूजनङ्किमर्थं न कुर्वन्ति ? । सर्वव्यापिनीश्वरे सिद्धे खल्वेकस्मिन्वस्तुनि स्वीकृते महत्पापं भवति ॥ तद्यथा चक्रवर्त्तिनं राजानम्प्रति कश्चिद्ब्रूयाद्भवान्दशहस्तप्रमिताया भूमे राजास्तीति तम्प्रति राज्ञो महान्कोपो यथा भवति तथेश्वरस्यैवं स्वीकारे चेति वेदितव्यम् ॥

२५—(प्र०) किञ्चिन्मात्राणाम्पाषाणपित्तलादिमूर्त्तीनां पूजने पुण्यंभवत्युत पापम् ? ॥

२६—(उ०) नाद्य कुतः किञ्चिन्मात्रस्य पित्तलादेर्मूर्त्तिपूजने पुण्यम्भवति चेत्तर्हि महत्याः पित्तलादिमूर्त्तेर्दण्डप्रहारेण महत्पापं भवतीति बुध्यताम् ॥ अन्यच्च वेदानाभिहित-

नाये है वे कभी चेतन नहीं होते वैसे चेतन कभी जड़ नहीं हो जाते यह निश्चय है। यदि कहो कि ईश्वर सर्वत्र व्याप्त है इस से पाषाणादि मूर्त्तियों में भी है तो पाषाणादि मूर्त्तियों के पूजने में क्या दोष है ? और क्यों खण्डन करते हो तो उत्तर यह है कि यदि ऐसी भावना रख पूजा करते हो तो पुष्प तोड़ना, चन्दन घिसना और हाथ जोड़ कर नमस्कार आदि कर्म क्यों करते हो ? क्योंकि ईश्वर पुष्प, चन्दन, हाथ और मुख आदि में भी व्यापक है जैसे पाषाणादि में व्यापक होने से ईश्वर पूजित होगा वैसे पुष्पादि के साथ टूटना घिसजाना भी संभव है यदि नहीं मानते तो अन्य घृणित पदार्थों का पूजन क्यों नहीं करते ? । जब ईश्वर सर्वव्यापक सिद्ध है तो एक छोटी सी किसी मूर्त्ति आदि वस्तु में उसको मानना बड़ा पाप है । तद्यथा—जैसे चक्रवर्त्ति राजा से कोई कहे कि आप दश हाथ भूमि के राजा है उसके प्रति जैसे राजा का वड़ा कोप होता है वैसे ईश्वर के इस प्रकार स्वीकार करने में ईश्वर वडा कोप करेगा यह जानना चाहिये ।

२५—(प्र०) छोटी २ वनी हुई पाषाण पित्तलादि की मूर्त्तियों के पूजन में पुण्य होता है वा पाप ? ॥

२६—(उ०) पहिला पक्ष पुण्य होना ठीक नहीं क्योंकि यदि छोटी २ पीतल आदि की मूर्त्तियों के पूजने में पुण्य होता है तो वडी २ पीतल आदि की घंटादिरूप मूर्त्तियों में दण्डा मारने से वडा पाप होता है ऐसा जानो और भी देखो कि वेद में नहीं

पाषाणादिमूर्त्तिपूजने महत्पापमेव भवतीति स्वीक्रियतान्नोचेन्नास्तिकत्वं स्वीकार्यम् ॥ न चरमः कुत. पापाचरणस्य वेदेऽनभिधानात् ॥ मनुष्यजन्मानेन व्यर्थमेव गच्छतीत्यतः ॥ तत्पूजनम्मुक्तिसाधनञ्चेन्न तस्या मूर्त्तेरपिशिल्पिना पूजारिणा वैकत्र बद्धत्वात्स्वयञ्जडत्वाच्चेति ॥

२७–(प्र०) ईदृक्कण्ठीतिलकधारणे किं मानङ्का वा युक्ति. ? ॥

२८–(उ०) हरिपदाकृतित्वम् ॥ कृष्णललाटे राधया कुङ्कुमयुक्तेन चरणेन कृतं ताडनं ललाटस्य शोभार्थञ्चेति ब्रूमः ॥ हरि शब्देन कस्य ग्रहणम् ? ॥ विष्णोरेवेति वदामः । नैतदेकान्ततः शक्यं ग्रहीतुम् ॥ अश्वसिंहसूर्यवानरमनुष्यादीनामपि ग्रहणाद्वेदानुक्तत्वादतएव पापजनकंतिलकमिति वेद्यम् ॥ किञ्च तिलकत्वमिति ॥ त्रिपुण्ड्रोर्ध्वपुण्ड्ररचनत्वमिति वदामः ॥ नैववक्तुमुचितम् ॥ तिलस्य प्रतिकृतिस्तिलकमल्पस्तिलस्तिलकंवेत्यर्थस्य जागरूकत्वादेतावतो दीर्घस्य ललाटे लिप्तस्य तिलकसंज्ञायां

कहे पाषाणादि मूर्त्ति के पूजन में महापाप ही होता है ऐसा मानो यदि न मानो तो वेद विरोधी होने से नास्तिक बनो। और पाप होना रूप द्वितीय पक्ष भी ठीक नहीं क्योंकि पाप करना भी वेद में नहीं कहा तो मनुष्य जन्म इस से व्यर्थ जाता है यदि कहो कि मूर्त्तियों का पूजना मुक्ति का साधन है तो ठीक नहीं क्योंकि उस मूर्त्ति को कारीगर वा पूजारी ने एक स्थान में स्थिरबद्ध किया और स्वयं जड़ है तो अन्य को क्या मुक्ति दे सकेगी ॥

२७–(प्र०) ऐसे विशेष चिन्ह युक्त कण्ठी और तिलक के धारण में क्या प्रमाण वा युक्ति है ? ॥

२८–(उ०) श्रीकृष्ण के पग के आकार तिलक इसलिये धारण करते है कि कृष्ण के मस्तक पर राधा जी ने लालचन्दन युक्त लात मारी थी और वैसी लात मारने से शोभा भी समझते है। (प्र०) हरि शब्द से किस को लेते हो ? हरि शब्द से विष्णु का ग्रहण करते है यह कहना ठीक नहीं क्योंकि घोड़ा, सिंह, सूर्य, वानर और मनुष्यादि का नाम भी हरि है उन का ग्रहण क्यों नहीं होता ? वेदोक्त न होने से तिलक लगाना अयुक्त है इसी से पाप कारी है यह जानना चाहिये। तिलक क्या वस्तु है ? यदि त्रिपुण्ड्र और ऊर्ध्वपुण्ड्र रचना को तिलक कहते हो तो यह कहना ठीक नहीं क्योंकि व्याकरण रीति से तिल के प्रतिबिम्ब को तिलक वा छोटे तिलको तिलक कहना चाहिये यह सिद्ध है तो इस प्रकार के लम्बीभूत चन्दनादि ललाट पर के लेपन की

मतायांभवत्सु प्रमत्तत्वापत्तिर्भवतीति वेद्यम् ॥

२९–(प्र०) मूर्त्तिपूजनादिषु पुण्यंभवत्युत पापम् ? ॥

३०–(उ०) मूर्त्तिपूजने कण्ठीतिलकधारणे च दोषो नास्ति कुतः यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशीत्यतः ॥

३१–(प्र०) भावना सत्यास्त्युत मिथ्या ? ॥

३२–(उ०) न प्रथमः कुतो दुःखस्य भावनांकोपि न करोति सदैव सुखस्यैव च पुनः सुखं न भवति दुःखञ्च भवत्यतो भावना न सत्या ॥ न द्वितीयः कथं विद्याधर्मार्थकाममोक्षाणां भावनया विना सिद्धिरेव न भवतीत्यतः ॥ यदि भावना सत्यास्ति चेत्तर्हि भवच्छरीरे रेलाख्ययानभावनाङ्कृत्वोपर्य्यासीमहि यावता कालेन यावद्देशान्तरन्तद्यानङ्गच्छति तावता कालेनैव भवच्छरीरन्तावद्देशान्तरगस्मान् गमये-च्चेत्तदा तु भावना सत्या नान्यथा ॥ पुनः पाषाणादिषु हीरकादिरत्नभावनाञ्जले दधि-घृतदुग्धभावनान्धूल्याङ्गोधूमपिष्टशर्कराभावनां शर्करायान्तन्दुलभावनान्तथा जडे चेत-

---

तिलक संज्ञा मानने में आप लोगों में प्रमाद प्राप्त होता है यह निश्चय जानना चाहिये ॥

२९–(प्र०) मूर्त्तिपूजनादि में पाप होता है वा पुण्य ? ॥

३१–(उ०) मूर्त्तिपूजन और कण्ठी तिलक धारण करने में कुछ दोष नहीं है क्योंकि जिस की भावना जैसी होती है उसकी वैसी ही सिद्धि हो जाती है ॥

३१–(प्र०) भावना सत्य है वा मिथ्या ? ॥

३२–(उ०) पहिला पक्ष भावना का सत्य मानना ठीक नहीं क्योंकि दुःख की भावना कोई नहीं करता किन्तु सदैव सुख की भावना करते है फिर भी सब को सुख नहीं मिलता किन्तु दुःख होता ही है इस से भावना सत्य नहीं । दूसरा पक्ष भावना का मिथ्या मानना भी ठीक नहीं क्योंकि भावना के विना विद्या, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि ही नहीं हो सकती । इस से यथायोग्य भावना करना ठीक है । यदि अन्य में अन्य की भावना करना सत्य है तो आप के शरीर में रेल की भावना करके हम बैठें तो जित ने समय में जितनी दूर रेल पहुंचती है उत ने समय में उतनी दूर आप का शरीर हम को पहुंचा देवे तब तो भावना ठीक नहीं तो मिथ्या ? फिर पत्थर आदि में हीरे आदि रत्नों की भावना, जल में दूध दही घी की भावना, धूलि में आटा और शक्कर की, शक्कर में तण्डुल की, जड़ में चेतन, चेतन में जड़, निर्धनी दरिद्र अपने में चक्रवर्त्ती राजा की और चक्रवर्ती राजा अपने में दरिद्र की भावना

नभावनांचेतने जडभावनान्दरिद्रः स्वस्मिंश्चक्रवर्त्तिभावनाञ्चक्रवर्त्ती स्वस्मिन्दरिद्रभावनाञ्च कुर्यात्सा तथैव सिद्धा भवेच्चेत्तदा तु सत्याऽन्यथा मिथ्येति बोद्धव्यम् । तर्हि भावना का नाम ॥ भावना तु पाषाणे पाषाणभावना रोटिकायां रोटिकाभावनेति यथार्थं ज्ञानमिति ब्रूमस्तस्मिंस्तद्बुद्धिरिति ॥ तथा रोटिकायां पाषाणभावना पाषाणे रोटिकाभावनाऽयथार्थज्ञानमतस्मिंस्तद्बुद्धिर्भ्रमोऽभावना चेति ॥

३३—(प्र०) प्रतिमाशब्देन किङ्गृह्यते ॥

३४—(उ०) पूजनार्था चतुर्भुजादिमूर्त्तिरिति वदामः ॥

३५—(प्र०) प्रतिमाशब्दस्य कोऽर्थः क्रियते ॥

३६—(उ०) प्रतिमीयते यया सा प्रतिमा किञ्चाऽनया प्रतिमीयते ॥ ईश्वरशिवनारायणादयश्चेति वदामः ॥ किञ्च भोरनया पाषाणादिमूर्त्यैश्वरस्य शिवादिशरीराणाञ्च प्रत्यक्षतया भवद्भिस्तोलनङ्कृताङ्किमतोयमर्थः क्रियते ? ॥ "तुलामानं प्रतामान सर्वञ्च स्यात्सुलक्षितम् ॥ षट्सु षट्सु च मासेषु पुनरेव परीक्षयेदिति"

करे और वह वैसी ही ठीक २ सिद्ध हो जावे तब तो सत्य अन्यथा मिथ्या जाननी चाहिये । तो फिर भावना किस का नाम है ? पत्थर में पत्थर रोटी में रोटी की भावना करना यथार्थ ज्ञान कहाता है । अर्थात् जैसे को वैसा जानना भावना है । रोटी में पत्थर और पत्थर में रोटी की भावना करना मिथ्या ज्ञान अन्य में अन्य बुद्धि भ्रमरूप अभावना कहाती है ॥

३३—(प्र०) प्रतिमा शब्द से क्या लेते हो ? ।

३४—(उ०) पूजने योग्य चतुर्भुज आदि की मूर्त्ति को लेते हैं ।

३५—(प्र०) प्रतिमा शब्द का क्या अर्थ करते हो ? ।

३६—(उ०) जिस से पदार्थ का स्वरूप वा अवधि जानी जावे वह प्रतिमा है ऐसा अर्थ करते हो तो किस का स्वरूप इस से जाना जाता है यदि कहो कि ईश्वर, शिव और नारायण आदि का बोध प्रतिमा से होता है तो हम पूछते हैं कि क्या इस पाषाणादि मूर्त्ति से ईश्वर और शिवादि के शरीरों को आप ने प्रत्यक्ष तोल लिया है कि जिस से ऐसा अर्थ करते हैं ? धर्मशास्त्रस्थ राजधर्म में लिखा है कि तराजू और प्रतीमान—बाट सब ठीक २ रखने चाहिये और छः २ महीने में इन की परीक्षा

मनुसाद्य बोध्यम् ॥ प्रतिमाशब्देन गुडघृतादीनान्तोलनसाधनानाम्पलसेटकादीनां मासादीनां च ग्रहणमिति निश्चय. ॥ "न तस्य प्रतिमाऽस्ति यस्य नाम महद्यश" इति यजुस्संहितायां द्वात्रिंशेऽध्याये ॥ ईश्वरस्य प्रतिमातोलनसाधनमेव न भवति तस्याऽतुलत्वात् ॥ अतएव भवत्कृतोऽर्थो व्यर्थएवेति बोध्यम् ॥

३७–(प्र०) पुराणशब्देन किङ्गृह्यते ? ॥

३८–(उ०) ब्रह्मवैवर्त्तादीन्यष्टादशपुराणोपपुराणानि चेति ब्रूम ॥ नैवंशक्यंपुराणशब्दस्य विशेषणवाचकत्वेन व्यावर्त्तकार्थत्वात् ॥ यथा पुरातनप्राचीनादयश्शब्दा नवीनार्वाचीनादीञ्छब्दार्थान्व्यावर्त्तयन्ति तथा पुराणादयश्शब्दानवीनाद्यर्थाश्चेति ॥ तद्यथा केनचिदुक्तम्पुराण घृतपुराणो गुड. पुराणी शाटीचेत्यर्थान्न नवीनघृतञ्चेत्यादि व्यावर्त्तते तस्मात्पुराणशब्देन वेदानान्तद्व्याख्यानब्राह्मणादीनाञ्च ग्रहण भवति न ब्रह्मवैवर्त्तादीनाञ्चेति "ब्राह्मणानीतिहासः पुराणानीति" "दशमेऽहनि किञ्चित्पुराणमाचक्षीत"॥ "पुराणविद्यावेदो दशमेऽहनि श्रोतव्य" इत्याद्यश्वमेधस्य पूर्त्यनन्तरन्नवदिनपर्यन्तमृग्वेदादिक श्रुत्वाऽऽख्याय च

राजा करावे इस प्रमाण के अनुकूल प्रतिमा शब्द से गुड़ घृत आदि के तोलने के साधन सेर आदि वा मासा आदि बटखरों का ग्रहण होना निश्चय है । और यजुर्वेद बत्तीसवें अध्याय के तीसरे मंत्र में ईश्वर कीप्रतिमा अर्थात् तोल साधन का निषेध किया है क्योंकि ईश्वर अतुल है इसी से आप का किया अर्थ व्यर्थ ही जानना चाहिये ॥

३७–(प्र०) पुराणशब्द से क्या लेते हो ? ॥

३८–(उ०) ब्रह्मवैवर्त्तादि अठारह पुराण और उपपुराण लेते हो सो ठीक नहीं क्योंकि पुराणशब्द विशेषण वाचक होने से व्यावर्तक अर्थ वाची होता है । जैसे पुराने प्राचीन आदि शब्द नवीन और अर्वाचीन आदि से निवृत्त करते वैसे पुराणादि शब्द नवीन आदि के वाच्य अर्थों को निवृत्त करते है । जैसे किसी ने कहा कि पुराना घृत पुराना गुड़ पुरानी साड़ी इस से घृत आदि में नवीन पन की निवृत्ति हो गई । इस कारण पुराणशब्द से वेद और वेद के व्याख्यान ब्राह्मण ग्रन्थों का ग्रहण होता है किन्तु ब्रह्मवैवर्त्तादि का नहीं, कल्पसूत्रकारों ने लिखा है कि ब्राह्मण ग्रन्थ ही इतिहास पुराण नामक है। अश्वमेध यज्ञ में दशमे दिन कुछ थोड़ी पुराण की कथा कहे सुने पुराणविद्या वेद का व्याख्यान दशमे दिन सुने अर्थात् नवदिन तक यज्ञ में ऋग्वेदादि सुन कह के दशमे दिन ब्रह्मज्ञान का

दशमेऽहनि ब्रह्मज्ञानप्रतिपादकमुपनिषत्पुराण शास्त्र यजमानादय· आचक्षरिञ्छृणुयुश्चेति ब्राह्मणावेदानामेव ग्रहणन्नान्यस्येति साक्ष्यात्सर्वेभ्यो वेदानामेव पुरातनत्वाच्चेति ॥ परन्तु मतमस्माकं खलु वेदा नान्यदिति सिद्धान्तः ॥ ब्रह्मवैवर्त्तादीनि व्यासनामव्याजेन सम्प्रदायस्थैर्जीविकार्थिभिर्मनुष्याणां भ्रान्तिकरणार्थानि रचितानीति जानीमः यथा शिवादिनामव्याजेन तन्त्राणि याज्ञवल्क्यादिनामव्याजेन च याज्ञवल्क्यादिस्मृतयश्च रचितास्तथैव ब्रह्मवैवर्त्तादीनीति विज्ञायताम् ॥

३९.—(प्र०) देवालयशब्देन भवद्भिः किङ्गृह्यते ? ॥

४०—(उ०) मूर्त्तिस्थापनपूजनस्थानानि घण्टादिनादकरणार्थानि मन्दिराणीति प्रतिजानीमः ॥ नैवं शक्यं कुतोऽत्र वेदविधेरभावाद्भ्रान्तियुक्तत्वाच्चेति यत्र होमः क्रियते तदेव देवालयशब्देनोच्यते कथं होमस्य देवपूजाशब्देन गृहीतत्वात् ॥ "अध्यापनम्ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम् । होमोदैवो बलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम् ॥ १ ॥ स्वाध्यायेनार्चयेतर्षीन् होमैर्देवान्यथाविधि । पितॄञ्छ्राद्धैर्नॄनन्नैश्च भूतानि बलिकर्मणा" ॥ २ ॥

प्रतिपादक ब्राह्मणान्तर्गत उपनिषद्भाग यजमान आदि कहें और सुनें इस प्रकार पुराणशब्द से ब्राह्मण और वेद का ही ग्रहण करना अन्य का नहीं ऐसी साक्षी है और वेद ही सब से पुराने हैं । परन्तु हमारा मत वेद है अन्य नहीं यही सिद्धान्त है ब्रह्मवैवर्तादि पुराण व्यासजी के नाम के छलसे मतवादी जीविकार्थी लोगोंने मनुष्यों को भ्रान्ति कराने वाले बनाये है । जैसे शिव आदि के नाम के छल से तंत्र और याज्ञवल्क्यादि के नाम के छल से याज्ञवल्क्यादि स्मृति रची है वैसे ही ब्रह्मवैवर्तादि पुराण जानो ॥

३९—(प्र०) देवालय शब्द से आप क्या लेते हो ? ॥

४०—(उ०) मूर्त्ति को स्थापन करने पूजने के स्थान जिन में कि घण्टानाद आर्त्ति आदि करते हैं उन को देवालय कहते हो तो ठीक नहीं क्योंकि यह कर्तव्य वेद से विरुद्ध और भ्राति युक्त होने से । इस से जिस में होम किया जाता वही स्थान देवालय शब्दवाच्य हो सकता है क्योंकि देवपूजा शब्द से होम का ग्रहण है । धर्मशास्त्र में लिखा है कि, पढ़ाना—ब्रह्मयज्ञ । तर्पण—पितृयज्ञ । होम—देवयज्ञ । वैश्वदेव भूतयज्ञ और अतिथिपूजन, से मनुष्ययज्ञ कहाता तथा—स्वाध्याय से ऋषिपूजन, यथाविधि होम से देवपूजन, श्राद्धों से पितृपूजन, अन्नों से मनुष्य पूजन, और वैश्वदेव से प्राणिमात्र का सत्कार करना चाहिये । इस से सिद्ध हो गया कि होम ही से देवपूजा

होमेनैव देवपूजनं भवतीति मनुनोक्तत्वाद्भवत्कृतोऽर्थोऽसंगतएवेति निश्चयः ॥ अतो होमस्थानं यज्ञशालैव देवालयशब्देन ग्राह्येति निश्चयः ॥

४१—(प्र०) देवशब्देन किङ्गृह्यते ? ॥

४२—(उ०) ब्रह्मविष्णुमहादेवादीनत्रपूजनार्थास्तन्मूर्त्तीश्चेति गृह्णीमः ॥ नैवं योग्यम् ॥ "यत्र देवतोच्यते तत्र तल्लिङ्गो मन्त्र" इति निरुक्ते । "मन्त्रमयी देवतेति" पूर्वमीमांसायाम् ॥ तथा मन्त्रमयी देवतेति ब्राह्मणे ॥ "आत्मैव देवतास्सर्वास्सर्वमात्मन्यवस्थितमिति" मनुस्मृतौ ॥ "मातृदेवो भव पितृदेवो भव आचार्यदेवो भव अतिथिदेवो भव" इति तैत्तिरीयोपनिषदि ॥ इत्यादिसाक्ष्यविरोधात्कर्मकाण्डमन्त्राणांमात्रादीनां विदुषाञ्च देवदेवताशब्दाभ्यां सङ्ग्रहादुपासनाज्ञानकाण्डयोरीश्वरस्यैव देवताशब्देन सर्वत्र स्वीकाराद्भवत्कृतोऽर्थो मिथ्यैवेति निश्चयः ॥ एवं सति पाषाणादिमूर्तीर्देवताशब्देन" यो गृह्णाति स न मनुष्योस्ति किन्तु पशुरेव च । "योऽन्यां देवतामुपास्ते स पशुरेव देवानाम् ॥ "उत्तिष्ठत जागृत तज्जानथ अन्या वाचो विमुञ्चथ" चेत्याद्युक्तत्वान्मूर्त्तयस्तु कदाचिद्देवता न भवन्तीति निश्चीयताम् ॥

होती है यह मनु की साक्षी है इस से आप का किया अर्थ असंगत है यही निश्चय जानो । इस लिये होम का स्थान यज्ञशाला ही देवालय शब्द से लेनी चाहिये ॥

४१–(प्र०) देवशब्द से क्या लेते हो ? ॥

४२–(उ०) पूजने के लिये ब्रह्मा विष्णु और महादेवादि देवताओं को और उन की मूर्त्तियों को देव शब्द से लेते हो सो ठीक नहीं क्योंकि वेद में जहां २ देवता कहा है वहां २ उस देवता नाम वाचक शब्द युक्त मंत्र का ही नाम देवता है यह निरुक्तकार का सिद्धान्त है और पूर्वमीमांसा और ब्राह्मणभाग में मंत्रस्वरूप ही देवता माना है मनुस्मृति में आत्मा के बीच सर्व जगत् अवस्थित है इसलिये आत्मा ही सब देवता है तैत्तिरीय आरण्यक में माता, पिता, आचार्य और अतिथि को ही देवता माना है । इत्यादि प्रमाणों से तुम्हारा कथन विरुद्ध होनेसे कर्मकाण्ड में मंत्रस्वरूप, माता आदि और विद्वानों का देव और देवता शब्द से ग्रहण तथा उपासना और ज्ञानकाण्ड में सर्वत्र देवता शब्द से ईश्वर का ही स्वीकार है इस से आप का किया अर्थ मिथ्या ही निश्चित होता है । जब ऐसा है तो जो देवता शब्द से पाषाणादि मूर्त्तियों का ग्रहण करता है वह मनुष्य नहीं किन्तु पशु ही है । और उपनिषद् में यही कहा है कि जो एक ईश्वर को छोड़ के अन्य देवता की उपासना करता है वह देवताओं में पशु ही है इसलिये हे मनुष्यो ! उठो जागो उस आत्मा को जानो अन्य की उपासनारूप वाणियों को छोडो इत्यादि प्रमाण से मूर्त्तियां कदापि देवता नहीं हो सकती यह निश्चय

४३–(प्र०) देवल देवलकशब्दाभ्यां किङ्गृह्यते ? ॥

४४–(उ०) मूर्त्तिपूजारीस्तँदधीनजीविकावतश्चेति ब्रूमः ॥

नैवमुचितंवक्तुम् ॥कथं, "यद्वित्तं यज्ञशीलानान्देवस्वन्ताद्विदुर्बुधाः ॥ अयज्वनान्तु यद्वित्तमासुरं तत्प्रचक्षत" इति मनुसाक्ष्यविरोधात ॥ यज्ञशीलानां यज्ञार्थं यद्वित्तंतद्देवशब्देनोच्येत तल्लाति गृह्णाति स्वभोजनाद्यर्थं सोऽयन्देवलो निन्द्यः ॥ यो यज्ञार्थयद्धनंतच्चोरयति स देवलकः ॥ कुत्सितो देवलो देवलकः कुत्सित इति सूत्रेण क प्रत्ययविधाना द्धवत्कृतोर्थोऽन्यथेति वेदितव्यम् ॥

४५–(प्र०) ईश्वरस्य जन्मरमणे भवत आहोस्विन्न ? ।

४६–(उ०) अप्राकृते दिव्ये जन्ममरणे भवतो नान्यथेति स्वीक्रियते ॥ भक्तानामुद्धारार्थंदुष्टानां विनाशार्थन्तथा धर्म्मस्थापनार्थमधर्म्मनिर्मूलार्थञ्च ॥ नैवन्न्याय्यङ्कस्मात्सर्वशक्तिमत्त्वात्सर्वान्तर्यामित्वादखण्डत्वात्सर्वव्यापकत्वादनन्तत्वान्निष्कम्पत्वाच्चेश्वरस्येति

४३–(प्र०) देवल और देवलक शब्दों से किसका ग्रहण करते हो ?

४४–(उ०) यदि कहते हो कि मूर्त्तिपूजने और मूर्त्तिपूजा से जीविका करने वाले देवल देवलक कहाते है तो ठीक नहीं क्योंकि धर्मशास्त्र में लिखा है कि " जो यज्ञ करने वालों का धन है वह देवस्व और यज्ञ न करने वालों का धन आसुर कहता है, देव नाम यज्ञ के धन को अपने भोजनादि के लिये लेने वाला देवल निन्दित कहाता है यहां व्याकरण रीति से मध्यम पद स्वशब्द का लोप हो जाता ह । और जो यज्ञ के धन की चोरी करता है वह देवलक अतिनिन्दित कहाता है क्योंकि व्याकरण के (कुत्सिते) सूत्र से निन्दित अर्थ में क प्रत्यय होता है इस से आप का किया अर्थ मिथ्या है यह जानना चाहिये ॥

४५–(प्र०) ईश्वर के जन्ममरण होते हैं वा नहीं ? ॥

४६–(उ०) यदि यह कहते हो कि अप्राकृत मनुष्यादि के जन्म मरण से विलक्षण दिव्य जन्ममरण होते हैं अन्यथा नहीं, यह स्वीकार है, क्योंकि भक्तों के उद्धार, दुष्टों के विनाश, धर्म की स्थापना और अधर्म की निर्मूल करने के लिये अस्वाभाविक जन्म ईश्वर धारण करता है तो ठीक नहीं क्योंकि ईश्वर सर्वशक्तिमान्, सर्वान्तर्यामी, अखण्ड, सर्वव्यापक, अनन्त और निश्चल निष्कम्प है ॥

सर्वशक्तिमानीश्वरोऽस्ति स सर्वन्याय्यङ्कार्य्यङ्कर्त्तुं समर्थोस्त्यसहायेन यश्च शरीरधारणादिसहायेन कार्य्यङ्कर्त्तुं समर्थोभवेन्न चान्यथेति नेत्थं चेत्तर्हि सर्वशक्तिमत्त्वमेव तस्य नश्येत् ॥ यथाखल्वसहायेन सर्वमिदञ्जगद्रचयित्वा धारयति तथैव हिरण्याक्षरावणकंसादीनां क्षणमात्रेण हननङ्कर्त्तुं समर्थोऽसहायेनोपदेशम्भक्तोद्धारन्धर्मस्थापनमधर्मदुष्टविनाशञ्च ॥ यथा सर्वशक्तिमत्त्वमीश्वरे स्वीक्रियते तथान्यायकारित्वादयोपि स्वभावाईश्वरे स्वीकार्याः॥ अन्यथा स्वनाशाद्यधर्ममपिकर्त्तुं समर्थो भवेदतईश्वरोऽनन्तोऽजोऽविकारी च ॥ प्रकृत्याकाशादिकं सर्वञ्जगदीश्वरस्याऽपेक्षयास्वल्पन्तुच्छंसान्तञ्चास्ति पुनस्तस्य का शरीरसामग्री यतो निवासार्थमधिकरणम्भवेत्तस्माद्बृहत्किमपि न विद्यत इति सर्ववेदसिद्धान्तः ॥ "सपर्य्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरꣳ शुद्धमपापविद्धम्"॥ "तदन्तरस्य सर्वस्य तदुसर्वस्यास्य बाह्यत."॥ "सत्यं ज्ञानमनन्तम्ब्रह्म"। "दिव्योह्यमूर्तः पुरुषस्सबाह्याभ्यन्तरो ह्यजः" ॥

जैसे ईश्वर सर्वशक्तिमान् है तो वह सब न्याययुक्त कार्य विना सहाय के कर ने को समर्थ, है फिर जो शरीर धारणादि सहाय से कार्य कर सके अन्यथा न कर सके तो ऐसा मानने में वह सर्वशक्तिमान् ही नहीं ठहर सकता। जैसे विना सहायता के इस सब जगत् को रच के धारण करता है वैसे ही हिरण्याक्ष, रावण और कंसादि को मारने को विना शरीरादि सहाय के समर्थ है तथा स्वतन्त्र असहाय ही उपदेश, भक्तों का उद्धार, धर्म का स्थापन, अधर्म तथा दुष्टों का विनाश कर सकता है। जैसे ईश्वर में सब शक्तियों का होना मानते हो वैसे न्यायकारीपन आदि स्वभाव भी ईश्वर मेंस्वीकार करने योग्य है। यदि ऐसा न मानोगे तो सर्वशक्तिमान् होने से ही अपना नाश, अन्याय अधर्म करने को भी समर्थ होजावे तो ईश्वरता ही न रहे, इससे ईश्वर अनन्त अजन्मा और अविकारी है। प्रकृति और आकाशादि सब जगत् ईश्वर की अपेक्षा छोटा तुच्छ और अन्त वाला है। फिर उसके शरीर बनने को कौन सामग्री है जिसमें वह समाय जावे उससे बड़ा कोई भी नहीं यह सब वेद शास्त्र से सिद्ध है तो कैसे एक शरीर में समाय सकता है वेद और उपनिषदों के प्रमाण.—वह सब में व्याप्त प्रकाशमय, सब प्रकार के शरीर से रहित, अच्छेद्य अभेद्य नाडी आदि के बन्धन से रहित, शुद्ध निर्मल, निष्पाप है। वह सब के भीतर और बाहर परिपूर्ण है। वह सत्यस्वरूप ज्ञानस्वरूप और सब से बड़ा अनन्त है। वह पुरुष पूर्ण परमात्मा दिव्यरूप सब प्रकार की मूर्त्ति से रहित सब के बाहर भीतर वर्त्तमान और अजन्मा है। वह शब्द, स्पर्श रूप, रस, गन्ध और

"अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययन्तथाऽरसन्नित्यमगन्धवच्च यत् ॥ अनाद्यनन्तम्महतः परन्ध्रुवन्निचाय्य तं मृत्युमुखात्प्रमुच्यते" "अणोरणीयान्महतो महीयानात्मास्य जन्तोर्निहितो गुहायाम्" ॥ "वेदाहमेतम्पुरुषम्महान्तमादित्यवर्णन्तमसः परस्तात्। तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनायेति" यजुर्वेदादिश्रुतिभ्य. ॥ ईश्वरस्याऽवतारोऽर्थाज्जन्ममरणे नैव भवत इति सर्वेषां वेदानां सिद्धान्तो वेदितव्य ॥

४७–(प्र०) ईश्वरस्साकार उत निराकारः ? ॥

४८–(उ०) निराकारश्चेति वदामः ॥ निराकारश्चेतर्हि तस्मात्साकारतत्कथञ्जायेत तथा हस्तादिभिर्विना कथञ्जगद्रचयेदिति ॥ मैवं वाच्यङ्कुतः ॥ सर्वासां शक्तीनां सामर्थ्यानामीश्वरे नित्यं विद्यमानत्वान्निराकारादेव साकारस्योत्पन्नत्वाच्चेति । तद्यथा ॥ "तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशस्सम्भूत., आकाशाद्वायुः, वायोरग्निः, अग्नेरापः, अद्भ्यः पृथिवी, पृथिव्या ओषधयः, ओषधिभ्योऽन्नम्, अन्नाद्रेतः रेतसः पुरुषः, स वा एष पुरुषोऽन्नरसमयः" ॥ आत्माऽऽकाशौ निराकारौ तस्माद्वायुर्द्विगुणः स्थूलोऽजायत ततस्त्रिगु-

नाश रहित, नित्य, अनादि, अनन्त, महत्त्व से परे निश्चल है उसी को ठीक २ जान के मृत्युरूप ग्राहक मुख से छूटता है। वह सूक्ष्म से सूक्ष्म और बड़े से बड़ा है इस जीव के अन्तःकरण में व्याप्त उपलब्ध होने वाला है। मनुष्य को ऐसा विचार रखना उचित है कि मैं उस परमात्मा को जानूं कि जो सब से बड़ा पूर्ण सूर्य के तुल्य प्रकाश वाला अन्धकार से परे है। क्योंकि उसी को जान कर मनुष्य मृत्यु से बच सकता है अन्य कोई मार्ग मुक्ति के लिये नहीं है। इत्यादि मन्त्रों के प्रमाण से ईश्वर का अवतार अर्थात् जन्ममरण नहीं होते यही सब वेदों का सिद्धान्त जानना चाहिये ॥

४७–(प्र०) ईश्वर साकार है वा निराकार ? ।

४८–(उ०) यदि कहो कि निराकार है तो ठीक है और जो निराकार होने में तुम को शङ्का है कि जो निराकार हो तो उससे साकार जगत् उत्पन्न कैसे होसके और हाथ आदि साधन के विना कैसे जगत् को रच सके सो यह ठीक नहीं क्योंकि सब प्रकार के सामर्थ्य निराकार ईश्वर में नित्य ही विद्यमान है इस से निराकार से ही साकार उत्पत्ति हो सकती है। जैसे प्रमाण–उप ही इस आत्मा से आकाश, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, जल से पृथिवी, पृथिवी से ओषधि, ओषधियों से अन्न, अन्न से वीर्य, वीर्य से शरीर उत्पन्न होता है सो ही यह शरीर अन्नरसमय कहाता है इस उत्पत्ति की प्रक्रिया में आत्मा और आकाश निराकार है। आकाश से द्विगुणा स्थूल

णः स्थूलोऽग्निर्जलं पृथिवी चेत्यादि निराकारात्सूक्ष्मात्स्थूलमिदञ्जगज्जायते तथा च स्थूलमयस्कान्तपाषाणादिकम्पिष्ट्वा चूर्णीभूतङ्कृत्वा प्रत्यक्षतया दर्शयितुं द्रष्टुं सर्वे मनुष्याः समर्था इत्यतो निराकारादेव साकारञ्जगज्जायत इति निश्चयः ॥ "अपाणिपादो जवनो ग्रहीता पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः" । "स वेत्ति विश्वन्न च तस्य वेत्ता तमाहुरग्र्यम्पुरुषम्पुराण"मित्यादि श्रुतिभ्य. ॥ हस्तपादाद्यङ्गैर्विनाप्यनन्तानां सर्वेषां सामर्थ्यानामीश्वरे वर्त्तमानत्वात्साकार ईश्वरस्साकारात्साकारोत्पत्तिर्हस्तपादादिभिर्विना जगदुत्पादयितुमसमर्थ ईश्वर इत्यादि वाग्जालं मनुष्याणाम्प्रमादेनैवेत्यवगन्तव्यम् ॥

४९–(प्र०) ईश्वरो मायावी न वेति ? ॥ मायाशब्दस्य कोऽर्थः क्रियते ? ॥

५०–(उ०) मायेश्वरशक्तिरित्युच्यते ॥ नैव योग्यम्भवितुम् ॥ कथं छलकपटयोरर्थयोर्मायाशब्दस्यापातात् ॥ कश्चिद्वदेदयम्मायावीत्यनेन किङ्गम्यतेऽयं छली कपटी चेति ॥ ईश्वरस्य मायाऽविद्यादि दोषरहितत्वान्निर्मलो निरञ्जनो नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभाव एवेतीश्वरो नैव कदाचिन्मायावीति निश्चेतव्यम् ॥ "क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः

वायु और तिगुणा स्थूल अग्नि, जल और पृथिवी है । इत्यादि प्रकार निराकार सूक्ष्म से यह स्थूल जगत् उत्पन्न होता है और स्थूल चुम्बक पत्थर आदि का चूर्णरूप पीस के प्रत्यक्षता से सब मनुष्य देख दिखा सकते इस कारण निराकार से ही जगत् उत्पन्न होता है । और विना हाथ पग के शीघ्र ग्रहण करता विना चक्षु के देखता विना कान के सुनता वह सब को जानता उस का जानने वाला कोई नहीं उस को सनातन पूर्णब्रह्म कहते है इत्यादि श्रुति प्रमाणों से हस्तपादादि अङ्गों के विना भी सब अनन्त सामर्थ्य ईश्वर में हैं ऐसा होने पर जो मनुष्य कहते हैं कि ईश्वर साकार है साकार से साकार की उत्पत्ति होती है हस्तपादादि के विना ईश्वर जगत् को उत्पन्न नहीं कर सकता इत्यादि वाग्जाल मनुष्यों का प्रमाद से ही निश्चय होता है ॥

४९–(प्र०) ईश्वर मायावी है वा नही ? और मायाशब्द का क्या अर्थ करते हो ? ॥

५०–(उ०) यदि कहते हो कि माया ईश्वर की शक्ति है तो यह ठीक नहीं हो सकता क्यों कि छल कपट अर्थ में माया शब्द प्रसिद्ध प्राप्त है । कोई कहे कि यह मायावी है इस से क्या ज्ञात होता है कि यह छली कपटी है । ईश्वर माया और अविद्यादि दोषों से रहित है इसी से निर्मल निरञ्जन नित्य शुद्ध बुद्ध और मुक्तस्वभाव ही है । ऐसा कभी न निश्चय करना चाहिये कि ईश्वर मायावी है क्योंकि इस में

पुरुषविशेष ईश्वर" इति पतञ्जलिसाक्ष्यस्य विद्यमानत्वात् ॥

५१–(प्र०) ईश्वरस्सगुणोऽस्ति निर्गुणो वा ? ॥

५२–(उ०) उभयमिति प्रतिजानीमः । तद्यथा घटः स्पर्शादिभिस्स्वकीयैर्गुणैस्सगुणस्तथा चेतनस्य ज्ञानादिभिर्गुणैः पृथक्त्वान्निर्गुणोपि स एव ॥ एवमीश्वरोपि सर्वज्ञानादिभिः स्वकीयैर्गुणैस्सगुण एवञ्जडत्वजन्ममरणाऽज्ञानादिभिर्गुणैः पृथक्त्वात्स एव निर्गुणश्चेति निश्चय. । "एको देवस्सर्वभूतेषु गूढस्सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा ॥ सर्वाध्यक्षस्सर्वभूताधिवासस्साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्चेति" साक्ष्याद्ब्रह्मादयो देवा रामकृष्णनृसिंहादयस्सर्वे जीवा एवेति निश्चयः ॥ किञ्च सर्वेषां ब्रह्मादीनां यः स्रष्टा धारयिताऽन्तर्यामी सर्वशक्तिमान्न्यायकारी स्वामी चास्ति तैः सेव्यस्तेभ्यो भिन्न एक एवेश्वर इति वेदितव्यम् ॥

५३-(प्र०) भवद्भिर्मुक्तिर्मन्यते न वा ? ॥

५४–(उ०) सालोक्यसामीप्यसानुज्यसायुज्यलक्षणा चतुर्धा मुक्तिर्मन्यतेऽस्माभिः

श्री पतञ्जलि मुनि की साक्षी भी विद्यमान है—अविद्या आदि क्लेशों और शुभाशुभ कर्मों के फलों से पृथक् मनुष्यादि की तुल्यता से रहित पुरुष परमेश्वर कहाता है ॥

५१—(प्र०) ईश्वर सगुण है वा निर्गुण ? ॥

५२–(उ०) ईश्वर सगुण निर्गुण दोनों प्रकार से है यह निश्चित है जैसे घट स्पर्श आदि अपने गुणों से सगुण तथा चेतन के ज्ञानादि गुणों से पृथक् होने से निर्गुण भी वही है ऐसे ही ईश्वर भी सर्वज्ञ आदि अपने गुणों से सगुण और जन्ममरण जड़पन अज्ञान आदि गुणों से पृथक् होने से निर्गुण भी वही है । उपनिषद् में कहा है कि एक ही देव ईश्वर सब भूतों में अदृष्टता से व्याप्त है सब का अन्तर्यामी सब का अध्यक्ष सब प्राणि अप्राणि जगत् का निवास स्थान सब का साक्षी चेतन केवल एक और निर्गुण है इस प्रमाण से ब्रह्मादि देवता और श्रीरामचन्द्र श्रीकृष्णचन्द्र तथा नृसिंह आदि सब जीव ही निश्चित होते हैं क्योंकि एक वही ईश्वर देव है ऐसा कहा है । किन्तु सब ब्रह्मादि का जो स्रष्टा और धारणकर्त्ता अन्तर्यामी सर्वशक्तिमान् न्यायकारी और स्वामी ब्रह्मादि को सेवने योग्य उन से भिन्न एक ही ईश्वर है ऐसा जानना चाहिये ॥

५३–(प्र०) आप लोग मुक्ति मानते हो वा नहीं ? ॥

५४–(उ०) सालोक्य, सामीप्य, सानुज्य और सायुज्य, यह चार प्रकार की

चतुर्विधाया मुक्तेः कीदृशोऽर्थो विज्ञायते ।। ईश्वरजीवयोस्समाने लोके निवासस्सा सालोक्यमुक्तिरित्यादयोऽर्था गृह्यन्ते ॥ नैवं शक्यं विज्ञातुङ्कुतः सर्वेषाञ्जीवानामीश्वररचिताऽधिष्ठिते लोके निवासात्स्वतो गर्द्दभादीनामपि सा मुक्ति. सिद्धेति ॥ सामीप्यमुक्तिरपि सिद्धा सर्वेषु पदार्थेष्वन्तर्यामित्वेन ईश्वरस्य सामीप्ये वर्त्तमानत्वात् ॥ सानुज्यमुक्तिरपि सर्वेषाञ्जीवानां स्वतस्सिद्धा ।। कस्मादनन्तचेतनेश्वरस्याऽपेक्षया जीवानां सान्तत्वचेतनापत्तेरल्पज्ञत्वादिगुणानां सत्त्वात् ॥ सायुज्यमुक्तिरपि सर्वेषाञ्जीवानां साधारणाऽस्ति ॥ कुत ईश्वरस्य सर्वत्र व्यापकत्वात्सर्वेषां जीवाना तत्र व्याप्यसम्बन्धाच्चेति ।। सा चतुर्धा मुक्तिर्व्यर्थेति मन्तव्यम् ॥ का तर्हि मुक्तिरिति वैकुण्ठगोलोककैलासादिषु निवास इत्युच्यते ॥ मैवं वाच्यन्तत्र पराधीनत्वादतएव दुःखापत्तेश्चेति ॥ वेदयुक्तिसिद्धान्तः खलुमुक्तिरेकैवास्ति नान्येति ॥ तद्यथा यथावद्विद्याविज्ञानधर्मानुष्ठानानन्तरं यन्निर्भ्रमम्ब्रह्मतत्त्वविज्ञानन्तेन सर्वज्ञस्येश्वरस्य सर्वानन्दस्य प्राप्त्या जन्ममरणादिसर्वदुःखनिवृत्तिरीश्वरानन्देन

मुक्ति हम मानते है । प्र०—चार प्रकार की मुक्ति का क्या अर्थ करते हो ? । उ०—एक लोक में जीव ईश्वर का निवास होना सालोक्य मुक्ति इत्यादि अर्थ लेते है यह मानना तुह्मारा ठीक नहीं क्योंकि ईश्वर के रचे और नियत किये लोक में सब जीवों का निवास होने से स्वयमेव गदहे आदि की भी वह मुक्ति सिद्ध है । और सब पदार्थों में अन्तर्यामी व्यापक होने से ईश्वर सब के समीप में वर्त्तमान है इस से सामीप्य मुक्ति भी स्वतः सिद्ध है । और सानुज्य मुक्ति भी सब जीवों को स्वतः सिद्ध ही है क्योंकि अनन्त चेतन ईश्वर की अपेक्षा जीवों में अन्तवाली चेतनता होने से जीव अल्पज्ञादि गुण वाले है । और सायुज्य मुक्ति भी सब जीवों की साधारण सिद्ध ही है । क्योंकि ईश्वर के सर्वत्र व्यापक होने और सब जीवों को उस में व्याप्य होने से व्याप्य व्यापक सम्बन्ध स्वतः सिद्ध ही है ॥ इसलिये वह चार प्रकार की मुक्ति मानना व्यर्थ ही है । जब यह मुक्ति मानना व्यर्थ हुआ तो अब कैसी मुक्ति मानोगे ? । यदि कहो कि वैकुण्ठ, गोलोक और कैलासादि के निवास को मुक्ति मानते है यह भी तुह्मारा कहना ठीक नहीं क्योंकि वहा पराधीन होने से ही दु ख प्राप्त होगा तो दुःख को मुक्ति नहीं कहा जाता । वेद और युक्ति से सिद्धान्त है कि मुक्ति एक ही है अन्य नही जैसे यथावत् जो विद्या, विज्ञान और धर्म का यथावत् अनुष्ठान करने के पश्चात् निर्भ्रान्त ब्रह्म को जानना उस से सर्वज्ञ ईश्वर के सब आनन्द की प्राप्ति से जन्म मरणादि सब दुःखों की निवृत्ति और ईश्वर के आनन्द के साथ सदैव अवस्थिति मुक्ति कहाती है

सह सदैवावस्थितिर्मुक्तिरित्यतो भवन्मता मुक्तिर्मिथ्येति निश्चयः ॥ सर्वम्परवशं दुःखं सर्वमात्मवशं सुखमिति मनुसाद्द्यात् ॥

५५–(प्र०) विष्णुस्वामिवल्लभसम्प्रदायादयो वेदसम्मता आहोस्वित्तद्विरोधिन ? ।

५६—(उ०) न पूर्वः ॥ चतुर्षु वेदेषु तेषामनभिधानात् ॥ वेदविरोधात्पाखण्डिन एव ते त्विति वेद्यम् ॥ "पाखण्डिनो विकर्मस्थान्वैडालव्रतिकाञ्छठान् ॥ हैतुकान्वकवृत्तींश्च वाङ्मात्रेणापि नार्चयेदिति" मनूक्तत्वात् ॥ एते सम्प्रदायशब्दार्थार्हा नैव सन्ति किन्तु सम्प्रदाहशब्दार्थार्हा एवेति । सम्यक् प्रकृष्टतया हि दग्धधर्मज्ञाना जना भवन्ति येषु ते सम्प्रदाहा इति विवेकः ॥ कदाचित्केनचित्तेषां विश्वास एव न कर्त्तव्यः ॥

५७–(प्र०) श्रीकृष्णः शरणं मम । अयमक्षरसमुदायः सत्योऽस्ति मिथ्या वेति ? ॥

५८—(उ०) वेदानुक्तत्वात्कपोलकल्पितत्त्वान्मिथ्यैवेति ॥ वेदोक्तगायत्रीमन्त्रोपदेशत्यागेन मिथ्याकल्पिताऽक्षरसमुदायोपदेशेन नास्तिकत्वं नरकप्राप्तिश्च भविष्यति भवताम् ॥

इस से आप की मानी मुक्ति मिथ्या ही है यह निश्चय जानो । क्योंकि परवश होना सब दुःख और स्वाधीन होना सुख है । तुह्मारी मुक्ति में सदा पराधीन रहना है ॥

५५–(प्र०) विष्णुस्वामी और वल्लभसम्प्रदायी आदि वेदानुकूल है वा विरोधी?

५६—(उ०) इस में वेदानुकुल होना प्रथम पक्ष ठीक नहीं क्योंकि चारों वेदों में उन का कहीं नाम ही नहीं है । वेदविरोधी होने से वे पाखण्डी ही है यह जानना चाहिये धर्मशास्त्र में कहा है कि:—पाखण्डी, वेदविरुद्ध कर्म करने हारे विड़ाल के से स्वभाव से युक्त शठ स्वार्थी बगुला के तुल्य पर पदार्थ पर ध्यान रखने वालों का वाणी से भी सत्कार न करे । ये विष्णुस्वामी आदि सम्प्रदाय शब्द से कहे जाने योग्य नहीं है किन्तु सम्प्रदाह अर्थात् सम्यक् नाशक ही है अच्छे प्रकार सम्यक् रीति से धर्म और ज्ञान जिन का नष्ट हो गया ऐसे जन जिन में हों वे सम्प्रदाह कहाते है कभी किसी को उन का विश्वास ही न करना चाहिये ॥

५७—(प्र०) (श्रीकृष्णः शरणं मम) यह अक्षरों का समुदायरूप मन्त्र सत्य है वा मिथ्या ? ।

५८—(उ०) वेदोक्त न होने और कपोलकल्पित होने से मिथ्या ही है । वेदोक्त गायत्री मन्त्र के उपदेश को छोड़ कर मिथ्या कल्पना किये अक्षरों के समुदायरूप मन्त्र के उपदेश से आप को नास्तिकता और नरक प्राप्ति होगी ॥

५९—(प्र०) कीदृगर्थोऽस्य क्रियते ? ॥

६०—(उ०) यः श्रिया सहितः कृष्णः स मम शरणमस्त्विति ॥ नैवं शक्यं कुतः श्रीकृष्णो मम शरणम्प्राप्नोतु हिनस्त्वित्याद्यर्थस्य सम्भवादशुद्धानर्थकोयमक्षरसमुदायोऽस्मात् कारणादस्योपदेशकरणं ग्रहणं विश्वासश्च केनचिन्नैव कर्त्तव्य इत्यर्थः॥ एवमेव 'नमोनारायणाय' 'नमश्शिवाय' 'नमो भगवते वासुदेवाय' 'ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे' इत्यादयोप्यक्षरसमुदायोपदेशा मिथ्यैव सज्जनैर्मन्तव्याः ।

अथ वल्लभसम्प्रदायस्थोपदेशोय ब्रह्मसम्बन्धोऽर्थाद्भ्रष्टसम्बन्धोऽक्षरसमुदायः सज्जनैर्वेदितव्यः ॥ श्रीकृष्णः शरणम्मम सहस्रपरिवत्सरमितकालजातकृष्णवियोगजनिततापक्लेशाऽनन्ततिरोभावोऽहं भगवते कृष्णाय देहेन्द्रियप्राणान्तः करणतद्धर्मांश्च दारागारपुत्राप्तवित्तेहपराण्यात्मना सह समर्पयामि दासोऽहं कृष्ण तवास्मि ॥ सहस्रपरिवत्सरेत्यादि

५९—(प्र०) उक्त मन्त्र का अर्थ कैसा करते हो ? ॥

६०—(उ०) श्री—लक्ष्मी के सहित जो कृष्ण है सो मेरे शरण हों यह अर्थ कहना ठीक नहीं हो सकता क्योंकि श्रीकृष्ण मेरे शरण को प्राप्त हों वा मेरे शरण को नष्ट करें इत्यादि अर्थ भी सम्भव है अर्थात् तुम्हारे मन्त्र में "प्राप्नोतु" पद नहीं है किन्तु ऊपर से कल्पना मात्र करते हो वैसे कोई "हिनस्तु" आदि क्रिया की भी कल्पना कर सकता है उस को तुम कैसे रोक सकोगे ? इसकारण तुम्हारा यह अक्षरसमुदाय रूप मन्त्र निरर्थक अशुद्ध है । इसी से इस मन्त्र का उपदेश करना वा दूसरे से उपदेश लेना और इसपर किसी को कदापि विश्वास न करना चाहिये । इसी प्रकार "नमो नारायणाय । नमः शिवाय । नमो भगवते वासु देवाय । ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे" इत्यादि अक्षरसमुदाय रूप बनावटी मन्त्रों के उपदेश भी सज्जनों को मिथ्या ही जानने चाहिये ।

और वल्लभसंप्रदायियों के ब्रह्मसम्बन्धनामक मन्त्र का उपदेश वस्तुतः भ्रष्टसम्बन्ध रूप ही सज्जनों को समझना चाहिये जैसे ब्रह्मसम्बन्ध का मन्त्र "श्रीकृष्णः शरणं०" इत्यादि है । इसका अर्थ यह है कि श्रीकृष्ण मेरे शरण हों । सहस्रों वर्षकाल से हुआ जो कृष्ण का वियोग उससे हुआ जो दुःख और क्लेश उनसे घेरा हुआ मैं श्रीकृष्ण भगवान् के लिये अपने देह, इन्द्रिय, प्राण, अन्तःकरण, और स्त्री पुत्र, घर, प्राप्त धन क्रियासहित देहादि के धर्मों को अपने आत्मा के सहित समर्पण करता हूं और हे कृष्ण ! मैं तुम्हारा दास हूं । सहस्र वर्ष की गणना करना व्यर्थ है क्योंकि तुम्हारा वल्लभ

सहस्रपरिगणनं व्यर्थम् ॥ कुतः वल्लभस्य युष्माकञ्च सर्वज्ञताया अभावात्प्रत्यक्षता च न विद्यते सहस्रं वत्सरा व्यतीता इत्यपि कृष्णवियोगे परिगणनमयुक्तं सन्दिग्धत्वात् ॥

६१–(प्र०) कृष्णशब्देन किङ्गृह्यते ? ॥

६२–(उ०) परब्रह्म गोलोकवासी वेति वदामः । नैतत्सत्यमस्ति कस्माज्जन्ममरणवतो जीवस्य कृष्णस्य परब्रह्मत्वाभावात् ॥ गवां पशूनां यो लोकस्स तु दुःखरूपो दुर्गन्धरूपत्वात्तत्र ये वसन्ति तेप्यसभ्या विद्याहीना आभीरवन्मूर्खा विज्ञेयाः ॥ किञ्च अस्मात्प्रत्यक्षभूतादाभीरपल्लेर्गोलोकात्पृथक्कश्चिद्गोलोकएव नास्तीत्यवगन्तव्यम् ॥ तदुपासकास्तत्र ये गमिष्यन्ति तेपि तादृशा भवन्तीति विज्ञेयम् ॥ कृष्णवियोगजनिततापक्लेशाऽनन्ततिरोभावोऽहमित्यादि ॥ इदमशुद्धम् ॥ कुतस्तापक्लेशयोः पुनरुक्तत्वादेकार्थत्वाच्च ॥ पुनरनन्तस्य क्लेशस्य तिरोभावविरहाद्देशकालवस्तुपरिच्छेदएवासम्भावनीयः ॥ कृष्णस्तु कृष्णगुणविशिष्टदेहवत्त्वाज्जन्ममरणादियुक्तत्वाद्भगवानेव भवितुमयोग्यः ॥ तस्मै

और तुम सर्वज्ञ नहीं कि सहस्र वर्ष से ही वियोग हुआ ऐसा निश्चय कर सको और न प्रत्यक्ष ही सहस्र वर्षों को जान सकते हो कि इतने ही वर्ष व्यतीत हुए । इसलिये कृष्ण वियोग में निश्चय न हो सकने से वर्ष गणना अयुक्त है ॥

६१–(प्र०) कृष्ण शब्द से क्या लेते हो ? ॥

६२—(उ०) यदि कहते हो कि गोलोक निवासी परब्रह्म कृष्ण शब्द से लेते है तो यह ठीक सत्य नहीं क्योंकि जन्ममरण वाले कृष्ण जीवात्मा परब्रह्म नहीं हो सकते। गौ आदि पशुओं का लोक दुर्गन्ध के बढ़ने से दुःख रूप होगा उस में जो वसते हैं वे अहीरों के तुल्य मूर्ख विद्याहीन असभ्य जानने चाहिये और विचार के देखें तो इस प्रत्यक्ष अहीरों के गामरूप गोलोक से पृथक् अन्य कोई गोलोक ही नहीं ऐसा जानना चाहिये । उस गोलोकनिवासी के उपासक जो वहां जावेंगे वे भी वैसे ही होते है यह जानना चाहिये । और जो कहा था कि अनन्त काल से कृष्ण के वियोग से हुए दुःख क्लेश से ढपा हुआ मै हूं इत्यादि यह अशुद्ध है क्योंकि ताप और क्लेश दोनों के एकार्थ होने से दोनों का कहना पुनरुक्त दोष है । फिर अनन्त क्लेश की निवृत्ति न हो सकने से प्रत्येक देश काल और वस्तु से क्लेश का पृथक् होना सम्भव नहीं । काले गुण से युक्त शरीरधारी जन्ममरण वाले श्रीकृष्ण को भगवान् कहना भी योग्य नहीं हो सकता । और उन कृष्ण के अर्थ शरीर, इन्द्रिय, प्राण, अन्तः-

देहेन्द्रियप्राणान्तःकरणतद्धर्माणा समर्पणमेवाशक्यं सदैव तन्निष्ठत्वात्स्वाभाविकत्त्वाच्च ॥ समर्पणम्भवति चेन्मलमूत्रादिपीडारागद्वेषाऽधर्माणामपि तस्मा एव समर्पणं स्यात्तत्फलभोगो नरकादिप्राप्तिः कृष्णायैव भवेदिति न्यायस्य विद्यमानत्वात् । दारागारपुत्राप्तवित्तेहानामपि समर्पणम्पापफलकमेव कुतः परदाराणां परपुरुषार्पणस्य पापात्मकत्वात् ॥ तद्धर्मांश्चेति- पुल्लिङ्गेन निर्देशाद्वित्तेहपराणीति नपुंसकलिङ्गेन निर्देशाच्चाशुद्धमेव वाक्यङ्कुतो लिङ्गवैषम्यनिर्देशात्परशब्दस्य त्रिषु लिङ्गेषु वर्त्तमानत्वाच्च ॥ आत्मना सह समर्पयामि दासोऽहं कृष्ण तवास्मीत्यन्तोऽनर्थोऽक्षरसमुदायः ॥ एकैवात्मा जीवो न द्वौ, पुनरात्मना सहात्माह देहेन्द्रियादीनि समर्पयामीत्यशुद्धमेव दासोर्थाच्छूद्र एवेति ॥ शूद्रस्य तु जुगुप्सितमिति मनुसाक्ष्यदर्शनात् । अस्याभिप्रायो वल्लभेन सिद्धान्तरहस्यादिग्रन्थेष्वनेकबालबुद्धिमनुष्यभ्रमणार्थः पापवृद्ध्यर्थश्च निरूपितः ॥ तद्यथा ॥ "श्रावणस्याऽमले पक्ष एकादश्यां महानिशि ॥ साक्षाद्भगवता प्रोक्तन्तदक्षरश उच्यते ॥ १ ॥ ब्रह्मसम्बन्धकरणात्सर्वे

करण और इन के धर्मों का समर्पण करना अशक्य है क्योंकि शरीर इन्द्रियादि अपने २ साथ स्वाभाविक स्थित है अर्थात् एक शरीर के नेत्रादि छुटा कर दूसरे को नहीं दिये जा सकते । यदि कहो कि नहीं, समर्पण होता ही है तो मल मूत्रादि और पीड़ा, राग, द्वेष तथा अधर्मों का भी समर्पण श्रीकृष्ण के लिये ही होवे और मलादि का फल दुःख नरकादि की प्राप्ति भी श्रीकृष्ण के लिये ही होवे यही प्रकट न्याय है । और स्त्री, घर, पुत्र, प्राप्त धन और क्रियाओं का समर्पण भी पापफल वाला ही क्योंकि परस्त्री का परपुरुष को समर्पण करना पापरूप ही है । तथा (तद्धर्मान्) इस का पुल्लिङ्गनिर्देश और (वित्तेहपराणि) इस विशेषण के नपुंसक होने से वाक्यसम्बन्ध भी अशुद्ध ही है । क्योंकि परशब्द तीनों लिङ्ग का वाचक हो सकता है । हे कृष्ण! मैं तुम्हारा दास हूं । आत्मा के साथ समर्पण करता हूं यहां पर्यन्त अक्षर समुदायरूप वल्लभ का मंत्र अनर्थक है जब जीवात्मा एक ही वस्तु है दो नहीं है तो फिर आत्मा के साथ देह और इन्द्रियादि कों का समर्पण करता हूं यह कथन अशुद्ध असम्बद्ध ही है । और दास अर्थात् शूद्र हूं शूद्र का नाम दासान्त निन्दित रखना चाहिये यह मनुस्मृति की साक्षी है सो धर्मशास्त्र के अनुसार तुम शूद्रवत् हो । इस उक्त ब्रह्मसम्बन्ध नामक मन्त्र का अभिप्राय वल्लभ ने सिद्धान्त रहस्यादि ग्रन्थों में अनेक बालबुद्धि मनुष्यों को भ्रम और पाप बढ़ाने के लिये निरूपण किया है (श्रावणस्या०) श्रावण महीने के शुक्लपक्ष की एकादशी की आधी रात्रि के समय में साक्षात् भगवान् ने जो कहा है उस को ज्यों का त्यों

षान्देहजीवयो. ॥ सर्वदोषनिवृत्तिर्हि दोषाः पञ्चविधाः स्मृता. ॥२॥ सहजा देशकालोत्था लोकवेदनिरूपिताः ॥ संयोगजाः स्पर्शजाश्च न मन्तव्याः कदाचन ॥३॥ अन्यथा सर्वदोषाणां न निवृत्तिः कथञ्चन । असमर्पितवस्तूनान्तस्माद्वर्जनमाचरेत् ॥ ४ ॥ निवेदिभिः समर्प्यैव सर्वं कुर्यादिति स्थिति' ॥ न मतं देवदेवस्य स्वामिभुक्तिसमर्पणम् । ५ ॥ तस्मादादौ सर्वकार्ये सर्ववस्तुसमर्पणम् ॥ दत्तापहारवचनन्तथा च सकलं हरेः ॥ ६ ॥ न ग्राह्यमिति वाक्यं हि भिन्नमार्गपर मतम् ॥ सेवकानां यथा लोके व्यवहार. प्रसिध्यति ॥ ७ ॥ तथा कार्यं समर्प्यैव सर्वेषां ब्रह्मता तत' ॥ गङ्गात्वे सर्वदोषाणा गुणदोषादिवर्णनम् ॥ ८ ॥ गङ्गात्वेन निरूप्यं स्यात्तद्वदत्रापि चैव हि" ॥ प्रथमतस्त्वसकृदुक्तं कृष्णः भगवानेव नेति कृष्णस्य मरणे जातईषन्न्यूनानि पञ्चसहस्राणि वर्षाणि व्यतीतानि स इदानीं वल्ल-

---

कहते है । ब्रह्म सम्बन्ध रूप मन्त्र के लेने से सब के जीव और शरीर के सब दोषों की निवृत्ति होजाती है और दोष पांच प्रकार के है ॥ एक सहज स्वाभाविक, २—देश से हुए ३—कालभेद से हुए, ४—लोक वा धर्मशास्त्र में कहे, और ५—वेद में कहे 'ये पाच प्रकार के दोष लग सकते है इनकी निवृत्ति ब्रह्मसम्बन्ध करण रूप मंत्र से होसकती है । परन्तु स्त्री आदि के सयोग से और स्पर्श से होने वाले देषों को न मानना चाहिये अन्यथा दोषों की निवृत्ति कभी नहीं हो सकती किन्तु समर्पण करने से ही दोषों की निवृत्ति हो सकती है इसलिये समर्पण अवश्य करना चाहिये । इस से गुसाइयों के चेले निवेदन करने के वस्तुओं सहित समर्पण करके ही सब कार्य करें यही नियम है । देवों के देव विष्णु का यह मत नहीं कि विना समर्पण किये गुसाई के चेले किसी वस्तु को भोगें और समर्पण यही है कि स्वामी गुसांईजी चेलों के सब पदार्थों का भोग प्रथम कर लेवें ॥ इस से सब कामों के आरम्भ में सब वस्तुओं का समर्पण करना ही ठीक है वैसे ही सब पदार्थ हरि को समर्पण करके ही पीछे ग्रहण करें ॥ गुसांई जी के मत से भिन्न मार्ग के वाक्य मात्र को भी गुसाई जी के चेला चेली कभी न सुनें । जैसा सेवकों का व्यवहार प्रसिद्ध है वैसा होना चाहिये । वैसे ही सब वस्तुओं का समर्पण करके सब के बीच में ब्रह्म बुद्धि करे । वैसे ही अपने मत में गुणों का और दूसरे के मत में दोषों का वर्णन किया करें ॥ जैसे गङ्गा में अन्य घृणित वस्तु पड़कर पवित्र गङ्गारूप हो जाते है वैसे अपने मत के दोष भी गुणरूप समझने चाहिये ॥ हमने पहिले से कई वार कहा है कि कृष्ण भगवान् ही नहीं हो सकते । जिन कृष्ण जी को शरीर त्यागे कुछ न्यून पाचहजार वर्ष व्यतीत हुए सो उन्होंने अब वल्लभ

भस्य समीपे कथमिदमुक्तवान् किन्तु कदाचिन्नैवोक्तवानिति ॥ किञ्च वल्लभेनायं पाखण्डजालोऽधर्मकरणार्थो रचित इति जानीमः ॥ साक्षाद्भगवता प्रोक्तमिति केवलं छलमेव तस्य वल्लभस्य विज्ञेयमिति तस्मात्तदक्षरसमुदायोपदेशस्य पापजनक त्वादसम्बन्धप्रलापत्वाच्च सर्व दोष निवृत्तिरिति ॥ दोषा निवृत्ता भूत्वा क्व गमिष्यन्तीति वाच्यम् ॥ नष्टा भविष्यन्तीति ब्रूयुश्चेत्कदाचिन्नैव नश्येयुरन्यकृताः पापदोषा अन्यमनुष्यन्नैव गच्छन्ति किन्तु कर्त्तैवं कृतं शुभाशुभफलम्भुङ्क्ते नान्यः कश्चिदिति ॥ हरिं कृष्णं समर्पणेनान्यकृताः पापदोषा गच्छेयुश्चेत्तर्हि तत्फलभोगार्थं नरकं दुःखं हरिरेव प्राप्नुयादिति निश्चयः ॥ कुतः स्वयं कृतानाम्पापपुण्यकर्मफलानां स्वभोगेनैव क्षयादिति न्यायाद्वल्लभकृता कल्पना व्यर्थैवेति निश्चयः ॥ सहजाइत्यादि ॥ सहजानां दोषाणां निवृत्या स्वयमेव निवर्त्तेत कुतस्तेषां सहजत्वादग्निदाहवत् ॥ सर्वसमर्पणे कृतेऽपि देहस्थानां कुष्ठादिदोषाणां क्षुत्पिपासाशीतोष्णसुखदुःखाऽज्ञानानाम्भवताम्भवच्छिष्याणाञ्च निवृत्तेरदर्शनात् ॥ तथा देशकालोत्था अपि

के समीप आकर कैसे कहा ? किन्तु कदापि नहीं कहा केवल बनावट ही है । किन्तु वल्लभ ने यह पाखण्ड जाल स्वार्थ और अधर्म करने के लिये रचा है यह जान पड़ता है । सक्षात् भगवान् ने कहा यह वल्लभ का केवल छल ही जानना चाहिये । इस लिये उस ब्रह्म सम्बन्ध नामक अक्षर समुदायरूप मन्त्र का उपदेश पाप का उत्पादक होने से असम्बन्ध और अनर्थक है । और जो सब दोषों की निवृत्ति मानते हो तो निवृत्त होकर दोष कहां जावेंगे । यदि कहो कि नष्ट हो जावेंगे तो कदापि नष्ट नहीं हो सकते क्योंकि अन्य मनुष्य के किये पाप दोष अन्य को नहीं प्राप्त होसकते किन्तु कर्ता ही अपने शुभाशुभ कर्म फल को भोगता है अन्य कोई नहीं। यदि कहो कि समर्पण करने से अन्य के किये पाप दोष हरि कृष्ण को प्राप्त हों तो उस के दुःखरूप नरकफल भोगने वाले हरि ही होवें यह निश्चय है क्योंकि स्वयं किये हुए पाप पुण्यरूप कर्म के फलों की अपने भोग से ही निवृत्ति हो सकती है इस न्याय से वल्लभकृत कल्पना व्यर्थ ही समझनी चाहिये । सहज स्वाभाविक दोषों की यदि निवृत्ति होवे तो स्वयं आत्मा की ही निवृत्ति हो जावे क्योंकि जैसे अग्नि के स्वाभाविक दाहगुण की निवृत्ति में अग्नि भी नहीं रहता वैसे आत्मा भी न रहेगा सब के समर्पण करने में भी आप तथा आपके शिष्यों के शरीरस्थ कुष्ठादि रोग और क्षुधा, प्यास, शीत, उष्ण सुख दु ख तथा अज्ञान आदि की निवृत्ति नहीं दीख पड़ती इस से तुम्हारा समर्पण ठीक नहीं और ब्रह्मसम्बन्ध से देश काल के परिवर्तन से हुए वात पित कफ और

वातपित्तकफज्वरादयो दोषा भवदादीनां कथन्न निवर्त्तन्ते ? ॥ लोकवेदयोर्मिथ्याभाषणचौर्यकरणमातृदुहितृभगिनीस्नुषापरस्त्रीगमनविश्वासघातादयो दोषास्तथा मातृदुहितृभगिनीस्नुषागुरुपत्न्यादिसंयोगजास्तासां स्पर्शजाश्च दोषा वल्लभाद्यैरिदानीन्तनैर्भवद्भिर्वल्लभसंप्रदायस्थैर्भगवदुपदेशेन वल्लभोपदेशेन वा कदाचन नैव मन्तव्याः किम् ? ॥ इति भगवद्वल्लभोपदेशेनानेन किङ्गम्यते भगवद्वल्लभौ वेदविरुद्धोपदेशान्नास्तिकावधर्मकारिणौ विद्याहीनौ विषयिणावधर्मप्रवर्त्तकौ धर्मनाशकौ न विज्ञायेते ॥ "योऽवमन्येत ते मूले हेतुशास्त्राश्रयाद्द्विजः ॥ स साधुभिर्बहिष्कार्यो नास्तिको वेदनिन्दकः" ॥ १ ॥ इति मनुसाक्ष्यस्य विद्यमानत्वात् ॥ अन्यथा सर्वदोषाणां न निवृत्तिः कथञ्चनेत्यादि रचनम्भङ्गापानङ्कृत्वैव कृतमिति विज्ञेयम् ॥ कुत ईदृगुपदेशेन सत्यधर्मगुणानां नाश एव भवत्यत ईदृशस्य भ्रष्टीकरणार्थस्य पापात्मकस्योपदेशस्योपरि केनचिदपि कदाचिद्विश्वासो नैव कर्त्तव्य इति निश्चयः ॥ अधर्मोपदेशोयमन्योऽपि वल्लभसंप्रदायस्थानां श्रोतव्यः—तस्मा-

---

ज्वर आदि दोष आप लोगों के क्यों नहीं निवृत्त होते ? और लौकिक धर्मशास्त्र तथा वेद में निरूपण किये मिथ्या बोलना, चोरी करना, माता, कन्या, बहिन, पुत्रबधू आदि अन्य स्त्रियों से समागम और विश्वासघात आदि दोष तथा माता कन्या बहिन पुत्रबधू और गुरुपत्नी आदि के संयोग और स्पर्श से उत्पन्न हुए दोष वल्लभ सम्प्रदाय के मानने वाले वल्लभ से लेके अब तक हुए आप लोगों को तथा भगवान् के वा वल्लभ के उपदेश से अन्य लोगों को क्या नहीं मानने चाहिये ; इस प्रकार भगवान् और वल्लभ के उपदेश से प्रतीत होता है कि भगवान् और वल्लभ दोनों वेद विरुद्ध उपदेश से नास्तिक अधर्म करने हारे, विद्याहीन, विषयी, अधर्म के प्रवर्त्तक और धर्म के नाशक जाने जाते है ॥ नास्तिक का लक्षण धर्मशास्त्र में यही किया है कि जो तर्क शास्त्र के आश्रय से वेद और धर्मशास्त्र का अपमान करता अर्थात् वेद से विरुद्ध स्वार्थ का आचरण करता है श्रेष्ठपुरुषों को योग्य है कि उस को अपनी मण्डली से निकाल के बाहर कर देवें क्योंकि वह वेद निन्दक होने से नास्तिक है इस से आप लोगों में नास्तिकता प्रतीत होती है ॥ और यह जो कहना है कि हमारे मत को ग्रहण किये विना दोषों की निवृत्ति अन्य किसी प्रकार से नहीं हो सकती यह रचना भाग पीकर के ही की है यह जानना चाहिये क्योंकि ऐसे मत के उपदेश से सत्यधर्म और गुणों का नाश ही होता है । इस से ऐसे भ्रष्ट करने के अर्थ प्रवृत्त हुए पापरूप उपदेश के ऊपर किसी को कदापि विश्वास नहीं करना चाहिये यह निश्चय है ॥ और भी थो-

दादौ स्त्रोपभोगात्पूर्वमेव सर्ववस्तुपदेन भार्य्यापुत्रादीनामपि समर्पणं कर्त्तव्यं विवाहानन्तरं स्वोपभोगे सर्वकार्ये सर्वकार्यनिमित्तं तत्कार्योपयोगिवस्तुसमर्पणं कार्य्यं, समर्पणं कृत्वा पश्चात्तानि तानि कार्याणि कर्त्तव्यानीत्यर्थः ॥ १ ॥ अथाऽस्य खण्डनम् ॥ विवाहानन्तरं स्वोपभोगात्पूर्वमेव भार्यापुत्रादीनामपि पवित्रीकरणार्थमाचार्याय गोस्वामिने समर्पणं कृत्वैव पश्चात् तानि कार्याणि कर्त्तव्यानीति भवद्भिरुपदिश्यते चेत्तर्हि स्वस्त्रीदुहितृभगिनीपुत्रादीनामपि पवित्रीकरणार्थं समर्पणं किमर्थं न क्रियते ? ॥ अस्माकमिच्छाऽन्येभ्यः स्वभार्यादीनां समर्पणार्थानास्त्यतो न क्रियत इति ब्रूयुश्चेत्तर्ह्यन्येषां भार्य्यादीनां समर्पणं स्वार्थम्पापरूपं किमर्थं कारयन्ति तत्पुण्यात्मकञ्चेत्तर्हि स्वभार्यादीनामप्यन्येभ्यः पुण्यात्मकं समर्पणं किमर्थं न क्रियते ? ॥ सिद्धान्तस्तु येन यया सह यस्य यस्याश्च विवाहो जातस्तयोः परस्परं समर्पणञ्जातमेव नान्यथेति वेदितव्यम् ॥ तस्मादस्य व्यभिचारमयोपदेशस्य वल्लभसंप्रदायस्य केनचित्पुरुषेण कयाचित्स्त्रिया च विश्वासः कदाचिन्नैव कर्त्तव्य इति

ड़ा यह वल्लभसम्प्रदायियों का अधर्मोपदेश सुनना चाहिये—जिस कारण सर्वस्व समर्पण के विना सब दोषों की निवृत्ति नहीं हो सकती इसलिये गुसांई जी के चेलों को उचित है कि अपने भोग करने से पहिले ही सब वस्तुओं का समर्पण अर्थात् स्त्री पुत्र आदि का भी समर्पण करें । विवाह होने पश्चात् अपने भोगने के सब काम में सब कार्य्यों का निमित्त उस कार्य के उपयोगी वस्तु का समर्पण करना चाहिये समर्पण कर के उन २ वस्तुओं से कार्य भोग करने चाहिये ॥ इस का खण्डन—यदि आप लोग यह उपदेश करते हो कि विवाह होने पश्चात् अपने भोगने से पहिले ही पवित्र करने के अर्थ स्त्री पुत्रादि का भी आचार्य गोस्वामी के लिये समर्पण कर के ही पश्चात् अपने भोग सम्बन्धी काम करने चाहियें तो अपनी स्त्री कन्या भगिनी और पुत्रादि का भी पवित्र करने के अर्थ समर्पण क्यों नहीं करते ? यदि कहो कि अपनी स्त्री आदि को औरों के लिये समर्पण करने की हमारी इच्छा नहीं इस से नहीं करते तो अन्यों की स्त्री आदि का पापरूप समर्पण अपने लिये क्यों कराते हो ? यदि कहो कि उन का हमारे लिये समर्पण करना पुण्यरूप होता है तो अपनी स्त्री आदि का पुण्यरूप समर्पण अन्यों के लिये क्यों नहीं करते ? । सिद्धान्त वस्तुतः यही है कि जिस का जिस के साथ विवाह हुआ उन का परस्पर समर्पण हो ही गया अन्यथा नहीं हो सकता यह जानो । इस से व्यभिचारमय उपदेशों वाले इस वल्लभ सम्प्रदाय का किसी पुरुष वा स्त्री को कदापि विश्वास न करना चाहिये यही निश्चय है । जो लोग विश्वास करते

निश्चयः ॥ ये विश्वासं कुर्वन्ति करिष्यन्ति वा तेषां नरकप्राप्तिरेव फलं कुतः पापाचरणोपदेशस्य दुःखफलत्वात् ॥

किञ्च पुष्टिप्रवाहमार्गोऽपि तादृश एव मिथ्या ॥ पुष्टिप्रवाहमर्यादा धर्माचरणार्था उताऽधर्माचरणार्थाः? ॥ नाद्यः कुतो वल्लभादीनामिदानीन्तनान्तानाम्परस्त्रीगमनाद्यधर्माचरणस्य प्रत्यक्षानुमानाभ्यां दर्शनात् ॥ अश्ववृषभवानरगर्द्दभादयो यथा अश्विन्यादिस्त्रियो दृष्ट्वा पुष्टिप्रवाहान्मैथुनमाचरन्ति तथा भवतामपि पुष्टिप्रवाहत्व दृश्यते नान्यथा । भवतामियमेव मर्यादा वेदविद्याधर्माचरणत्याग परस्त्रीगमनं परधनहरणमधर्माचरणं वेदोक्तधर्मविनाशकरणञ्चेत्यत्रैव पुष्टिप्रवाहौ चेति निश्चीयते ॥ अस्मिन्नर्थे वल्लभ आह ॥ वैदिकत्वं लौकिकत्वं कापटयात्तेषु नान्यथा ॥ वैष्णवत्वं हि सहजन्ततोऽन्यत्र विपर्यय इति ॥ अतएव वल्लभे हि नास्तिकत्वं सिद्धम्भवति कुत. लौकिकवैदिकत्वस्य कपटमध्ये गणितत्वात् ॥ तस्य संप्रदायस्था अपि नास्तिका गणनीया वेदविरुद्धाचरणात् ॥ यज्ञो वै विष्णुर्व्यापको वा ॥ तदनुष्ठानत्यागान्मूर्त्तिपूजनासक्तत्वाद्व्यापकभक्तिवियोगाद्भवन्तो

है वा करेंगे उन को नरक प्राप्ति ही फल होना सम्भव है क्योंकि पापाचरण के उपदेश का फल दुःख ही है ॥

और हमारे मत में शरीरादि की पुष्टि परम्परा से चली आती है यह भी वैसी ही मिथ्या है । पुष्टि प्रवाह की मर्यादा धर्माचरण के लिये है वा अधर्माचरण के अर्थ ? । इसमें प्रथम पक्ष ठीक नहीं क्योंकि वल्लभ से ले के अब पर्य्यन्त हुए गुसाइयों का परस्त्री गमनादि अधर्माचरण प्रत्यक्ष और अनुमान से प्रसिद्ध दीख पड़ता है । घोड़े बैल बानर और गर्दभ आदि जैसे घोड़ी आदि अपनी सजातीय स्त्रियों को देख के पुष्टि की उन्मत्तता के प्रवाह से मैथुन को प्रवृत्त होते है वैसे ही आप लोगों का भी पुष्टिप्रवाह दीख पड़ता है अन्यथा नहीं । आप लोगों की यही मर्यादा है कि वेदविद्या और धर्माचरण का त्याग परस्त्रीगमन पराया धन हरना अधर्म का आचरण और वेदोक्त धर्म का नाश करना इसी में पुष्टि और प्रवाह निश्चित होते है ॥ इस विषय में वल्लभ कहता है कि— "लौकिक और वैदिक धर्म विषय कपटरूप होने से यथार्थ नहीं इस में सन्देह नहीं किन्तु एक वैष्णव मत ही सहज है इस से अन्य सब विपरीत है,, इसी से वल्लभ में नास्तिकता सिद्ध हो गई क्योंकि वल्लभ ने लौकिक वैदिक विषय कपट में गिना है । वल्लभ के सम्प्रदाय वाले सभी विरोधी होने से नास्तिक समझने चाहिये । विष्णु शब्द का अर्थ यज्ञ व व्यापक होता है उस यज्ञ वा व्यापक विष्णु परमेश्वर की भक्ति का अनुष्ठान

वैष्णवा एव नेति निश्चेतव्यम् ॥ पूजानाम सत्कारस्सज्जनानां तस्या अरिर्नामशत्रुरय-म्पूजारिशब्दार्थो वेद्यः ॥ आर्तिर्नाम दुःखन्ताङ्करोतीत्यार्तिकारः ॥ गोशब्देन पशुगुणवान् सांईशब्देन यवनाऽऽचार्यः ॥ अयगोसांइ्याख्यशब्दार्थोऽर्थोद्यस्य गम्यागम्ययोर्विवेको न भवेत्त्यागञ्च न कुर्याद्धर्मन्यायविरुद्धपक्षपातत्यागञ्च वेदोक्तन्धर्मम्पपरित्यजेत्तादृशा भवन्तो दृश्यन्त इति ॥ वाजिशब्देनाऽश्वो वा गर्द्दभो मध्यस्थो वेति वावाजिशब्दार्थः ॥ रागोऽस्यास्तीति रागी वै इति निश्चयेन रागीति वैरागिशब्दार्थ. । दण्डेन तुल्यो दण्डवत् दण्डवन्नाम काष्ठवत् ।। हिन्दुशब्दस्यार्थः कृष्णवर्णो दस्युः पाषाणादिमूर्त्तिपूजको दासईश्वरोपासनाविरहश्चेत्यादयोर्थाः ॥ इत्यादिशब्दार्थानामन्धपरम्पराऽविद्याप्रचारेण विद्यात्यागेनार्यशब्दाभिधानार्थज्ञानेन च विनाऽद्यपर्यन्तमागता वल्लभादिसम्प्रदायरूपेणात्यन्तं परिणता सा सद्यस्सज्जनैस्त्यज्यतामिति निश्चयः ॥

अथ शुद्धाद्वैतमार्त्तण्डखण्डनं लिख्यते ॥ शुद्धाद्वैतशब्दस्य कोऽर्थः क्रियते ? ॥ द्विधा

छोड़ के मूर्तिपूजन में आसक्त होने से आप लोग वैष्णव ही नहीं हो सकते यह निश्चय जानना चाहिये । पूजा नाम सत्पुरुषों का सत्कार उस का जो अरि नाम शत्रु यह पूजारिशब्द का अर्थ है । आर्तिनाम दु.ख को जो करे वह आर्तिकर्ता कहाता है । गोनामक पशुगुणयुक्त सांई शब्द से मुसलमानों का आचार्य अर्थात् जिस को अगम्यागमन का विवेक न हो और त्याग भी न करे धर्मन्याय से विरुद्ध पक्षपात को भी न छोड़े और वेदोक्त धर्म का त्याग कर देवे वह गोसांई कहाता है वैसे ही आप लोग दीख पड़ते है इसी से गोसांई कहाते हो । वाजी नाम घोड़ा दूसरे वा शब्द से घोड़े का विकल्प करने से गदहा वा मध्यस्थ खिच्चर यह "वावाजी" शब्द का अर्थ है ॥ राग जिस में हो वह रागी वै नाम निश्चय कर जो रागी हो उस को "वैरागी" कहते है यही वैरागी शब्द का अर्थ है दण्ड नाम काष्ठ के तुल्य अर्थात् जो जड़ हो उस को दण्डवत् कहते हैं यह "दण्डवत्" शब्द का अर्थ है ॥ काले वर्ण वाला, डाकू. पाषाणादि मूर्त्तियों का पूजक, सेवक, गुलाम और ईश्वर की उपासना से रहित इत्यादि हिन्दु शब्द का अर्थ है ॥ इत्यादि शब्दों के अर्थों की अन्धपरम्परा अविद्या के प्रचार, विद्या के त्याग और आर्य शब्द के वाच्य अर्थ के न जाने विना अब तक चली आई और वल्लभादि सम्प्रदायोंके साथ अत्यन्त परिणाम को प्राप्त है यह अन्धपरम्परा सज्जनों को शीघ्र ही त्यागने योग्य है यह निश्चित है ॥

अब शुद्धाद्वैत मार्तण्ड का खण्डन लिखते है—शुद्ध अद्वैत शब्द का क्या अर्थ

द्वतं द्वीतं द्वीतमेव द्वैतं न द्वैतमद्वैतं कार्यकारणरूपमेकीभूतमेव ॥ यद्वा तदेव ब्रह्म स्त्रीपुरुषरूपेण द्विधा जातं क्रीडाकरणार्थमिति च ॥ नैवञ्छक्यं वक्तुम् ॥ कुतः ॥ अविद्यादिदोषरहितत्वात् सदैव विज्ञानस्वरूपत्वाद्ब्रह्मणो जगद्रूपत्वमयोग्यमेव ॥ यदि जीवादिकार्यरूपं यज्जगद्ब्रह्मैवास्ति तर्ह्यनन्तविज्ञानरचनधारणसर्वज्ञतासत्यसङ्कल्पादयो गुणा अस्मिञ्जगति कथन्न दृश्यन्ते ॥ तथाच ॥ जन्ममरणहर्षशोकक्षुधातृषावृद्धिक्षयमूढत्वादयो दोषा जगत्स्था एवं सति ब्रह्मण्येव भवेयुर्बन्धनरकदुःखविषयभोगादयश्च ॥ तस्माद्वल्लभकृतोऽर्थो मिथ्यैवेति वेदितव्यम्। द्वीतमिति ॥ द्वीतं तदेव द्वैत स्यादद्वैतन्तु ततोऽन्यथा ॥ सर्वं खल्विदम्ब्रह्म तज्जलानिति पठ्यते ॥ इति वल्लभप्रभुकनन्द्रष्टव्यम् ॥ द्विधाकारणकार्यरूपेण परिणतञ्चेत्तर्ह्यज्ञानदुःखबन्धननरकप्राप्त्यादयो दोषा ब्रह्मण्येवस्युः ॥ पूर्वावस्थितस्य द्रव्यस्यावस्थान्तरप्राप्तिः परिणामः ॥ तथैव भवन्मते ब्रह्मैव जगदाकारञ्जातमनेन किमागतमिति श्रूयताम् ॥ ये जगत्स्था अविद्याज्वरपीड़ादयो दोषा अपि वल्लभेन ब्रह्मण्येव स्वीकृता अतएव भवन्मतं वेदयुक्तिविरुद्धमेवेति विज्ञेयम् । वल्लभेन सर्वं खल्विदं ब्रह्म वेद नेह नाना-

---

करते हो ? दो प्रकार से प्राप्त हो वह द्वीत कहाता जो द्वीत है वही द्वैत और जो द्वैत न हो वह अद्वैत—कार्य कारण का एक रूप होना है अथवा वही एक ब्रह्म स्त्री पुरुष रूप से दो प्रकार का क्रीड़ा करने के लिये प्रकट हुआ यह कहना ठीक नहीं ॥ क्योंकि अविद्यादिदोषों से रहित होने और सदैव विज्ञान स्वरूप होने से ब्रह्म का जगत्रूप होना अयोग्य ही है । यदि जीव आदि कार्यरूप जो जगत् है वह ब्रह्म ही है तो अनंत, विज्ञान, रचन धारण, सर्वज्ञता, सत्यसङ्कल्प आदि गुण इस जगत् में क्यों नहीं दीख पड़ते ? और ब्रह्म को कार्यरूप मानें तो जन्म, मरण, हर्ष, शोक भूख, प्यास, बढ़ना, घटना और मूढपन आदि जगत् के प्राणियों के दोष ब्रह्म में प्राप्त होवें इस से बन्धय, नरक दुःख और विषयभोग भी ईश्वर को ही होवें इस से वल्लभ का किया अर्थ मिथ्या ही जानना चाहिये । और द्वीत, द्वैत एकही वात है द्वैत का निषेध अद्वैत कहाता इस का प्रत्यक्ष उदाहरण "सर्वं खल्विदं०" यह श्रुति है यह वल्लभ का भूंकना है । कार्य कारण रूप ब्रह्म दो प्रकार से परिणत है तो दुःख, बन्धन, और नरक प्राप्ति होना आदिदोष ब्रह्म में ही होवे । पूर्व अवस्थित द्रव्य की अवस्थान्तरप्राप्ति परिणाम कहता है । वैसे ही आपके मत में ब्रह्म ही जगत्रूप बनगया इससे क्या आया यह सुनो । जो जगत् में अविद्या ज्वर पीड़ा आदि दोष भी वल्लभ ने ब्रह्म में ही मानलिये इसी से आप का मत वेद और युक्ति से विरुद्ध है यह जानना चाहिये । वल्लभ ने (सर्वं ख-

स्ति किञ्चना ॥ तज्जलानितिशान्त उपासीतेत्यादि श्रुतीनामर्थो नैव विज्ञातः । कुतः ॥ विदुषा समाधिसंयमे विज्ञानेन यादृशं ब्रह्म विज्ञायते तत्रत्योऽयमनुभवः॥ यथा केनचिदुक्तं सर्वं खल्विदं सुवर्णमिह नानापित्तलादिधात्वन्तरं मिलितं नास्ति ॥ तथैव सच्चिदानन्दैकरसब्रह्मणि नाना वस्तु मिलितं नास्ति ॥ किन्तु सर्वं खल्विदं ब्रह्मैकरसमिति विज्ञेयमखण्डैकरसत्वादभेद्यत्वाद्ब्रह्मणश्चेति यथाऽयमात्मा ब्रह्मेत्यत्रेदं शब्देनात्मनो ब्रह्मणएव ग्रहणमिति निश्चेतव्यं न कस्यचिज्जगद्वस्तुनः संबन्धग्रहणञ्च ॥ तथा तज्जलानिति ब्रह्म शान्तः सन्नुपासीत तस्माद्ब्रह्मानन्तसामर्थ्यादेवास्य जगतो जननधारणप्राणादीनि भवन्तीत्येवम्ब्रह्मोपासनीयमेव नान्यदित्यर्थो वल्लभेनापि नैव विज्ञातस्तत्संप्रदायस्थानाम्भवतान्तु का कथा॥ "सर्वं ब्रह्मात्मकं विश्वमिदमाबाध्यते पुरः ॥ सर्वशब्देन यावद्धि दृष्टश्रुतमदो जगत् ॥ १ ॥ बोध्यते तेन सर्वं हि ब्रह्मरूपं सनातनम् ॥ कार्यस्य ब्रह्मरूपस्य ब्रह्मैवस्याद्धिकारणम् ॥ २ ॥ साकारं सर्वशक्त्येकं सर्वज्ञं सर्वकर्तृ च ॥ सच्चिदानन्दस्वरूपं हि ब्रह्म तस्मा-

---

ल्विदं ब्रह्म०) इत्यादि श्रुतियों का अर्थ नहीं जाना क्योंकि समाधि के संयम करने में विज्ञान के प्रकाश से जैसा ब्रह्म स्वरूप जाना जाता है उस समय का किया विद्वानों का अनुभव ही श्रुति का तात्पर्य है । जैसे किसी ने कहा कि:—सब यह सुवर्ण है इस में अनेक पीतल आदि धातु मिले नहीं है वैसे सच्चिदानन्द स्वरूप एकरस ब्रह्म के बीच में नाना वस्तु मिली नहीं है किन्तु यह सब ब्रह्म ही एक रस है ऐसा जानना चाहिये क्योंकि ब्रह्म एकरस अखण्ड और अभेद्य है । जैसे (अयमात्मा ब्रह्म) यह आत्मा ब्रह्म है इस वाक्य में इदम् शब्द से ब्रह्मात्मा का ही ग्रहण होता है किन्तु किसी जगत् के वस्तुका सम्बन्ध ग्रहण नहीं होता । (तज्जलान इति ब्रह्म) "तज्ज" नाम उसी से यह सब जगत् उत्पन्न हुआ "तल्ल" नाम उसी में सब लय होता "तदनु" नाम उसी में सब जगत् चेष्टा कर रहा है इस प्रकार शान्त हुआ पुरुष ब्रह्म की उपासना करे । अर्थात् उस ब्रह्म के अनन्त सामर्थ्य से ही इस जगत् के जन्म मरण और चेष्टादि कर्म होते हैं इस प्रकार से ब्रह्म ही की उपासना करनी चाहिये अन्य की नहीं यह अर्थ वल्लभ ने नहीं जाना तो वल्लभ ने सम्प्रदायी आप लोगों की तो कथा ही क्या है । यह सब जगत् ब्रह्म स्वरूप है यह पहिले ही जताया है । सर्व शब्द से जितना देखा सुना यह जगत् है वह सब जानना इससे यह सब जगत् ब्रह्मरूप सनातन है क्योंकि ब्रह्मरूप कार्य जगत् का कारण ब्रह्म ही हो सकता है । वह ब्रह्म साकार, सर्वशक्तियुक्त, एक, सर्वज्ञ और सब का रचने हारा सच्चिदानन्द स्वरूप है उसी से यह जगत् हुआ है । इत्यादि

दिदञ्जगत् ॥ ३ ॥ शुद्धाद्वैतपदे ज्ञेयः समासः कर्मधारयः॥ अद्वैतशुद्धयोः प्राहुः षष्ठी-तत्पुरुषं बुधा." ॥४॥ इत्यादयः श्लोकाः शुद्धाद्वैतमार्त्तण्डे अर्थतोऽशुद्धा एवेति निश्चयः॥ कर्मधारयसमासोऽसंगतः कुत कार्यकारणयोस्तादात्म्यगुणादर्शनात् ॥ षष्ठीतत्पुरुषोऽप्यसङ्गतः द्वौ चेद्वस्तुतो न कदाचिदेकता अवास्तवौ द्वौ चेत्कार्यकारणकथनं व्यर्थम् ॥ शुद्धश्च शुद्धा च शुद्धे तयोस्स्त्रीपुंसयोरद्वैतमर्थान्मैथुनसमये द्वैतं स्त्रीषु राधाभावना स्वस्मिन् कृष्णभावना च क्रियते ॥ अहं कृष्णस्त्वं राधा ह्यानयोरस्तु संगम इत्यादि पतितकारकं वल्लभादीनां मतमिति निश्चयः ॥ कुतः लक्ष्मणभट्टेन संन्यासं पूर्वङ्गृहीत्वा पुनर्गृहाश्रमः कृतः स एव प्रथमतः श्ववद्वान्ताशी जातः तत्पुत्रो वल्लभोपि पूर्वं विष्णुस्वामिसम्प्रदाये विरक्ताश्रमङ्गृहीत्वा पुनरभूद्गृही तथानेकविधो व्यभिचारो गोकुलनाथेन विट्ठलेन च कृतस्तत्तत्सम्प्रदाय ग्रन्थेषु प्रसिद्धः ॥ लक्ष्मणभट्टं मूलपुरुषमारभ्याद्यपर्यन्तं व्यभिचारादिदुष्टङ्कर्म यथावद्वल्लभसम्प्रदाये दृश्यते येऽस्य सम्प्रदायस्योपरि विश्वासङ्कुर्वन्तीमान् गुरूँश्च

वल्लभ के श्लोक शुद्धाद्वैतमार्तण्ड नामक ग्रन्थ में वस्तुतः अशुद्ध ही हैं यह निश्चय जानो शुद्ध नाम कार्य और अद्वैत नाम कारण जो शुद्ध है वही अद्वैत, यह कर्मधारय समास कार्य कारण के एक स्वरूप एकात्मक गुण वाले न होने से असङ्गत हैं। षष्ठीतत्पुरुष-समास भी ठीक नहीं क्योंकि वस्तुतः जो दो पदार्थ है उनकी एकता क्योंकर होसकती है ? और यदि वस्तुतः दो नहीं है तो कार्य कारणरूप कहना व्यर्थ है इससे शुद्ध पुरुष और शुद्ध स्त्री दोनों का एक शेष समास भी असङ्गत है। अर्थात् मैथुन समय में द्वैत स्त्रियों में राधा भावना और अपने में कृष्ण की भावना करते हैं। मैं कृष्ण तू राधा मेरा तेरा सङ्गम होवे इत्यादि कुकर्म से वल्लभादि का मत पतित करने वाला जानना चाहिये क्योंकि इनका पूर्व आचार्य लक्ष्मण भट्ट हुआ उसने पहिले संन्यास ग्रहण करके पीछे गृहाश्रम धारण किया इसलिये लक्ष्मण भट्ट ही पहिले कुत्ते के तुल्य वान्ताशी अर्थात् उगले हुए को खाने वाला हुआ। पहिले गृहाश्रम को छोड़ के संन्यास लिया पीछे उसी वान्त के तुल्य त्यागे हुए गृहाश्रम का ग्रहण और संन्यास का त्याग किया। इसी लक्ष्मण भट्ट का पुत्र वल्लभ हुआ इसने भी पहिले विष्णु स्वामी के सम्प्रदाय में विरक्त (संन्यास) आश्रम ग्रहण कर फिर गृहाश्रम धारण किया। और गोकुलनाथ विट्ठल ने अनेक प्रकार का व्यभिचार किया इत्यादि बातें इनके मत के ग्रन्थों में प्रसिद्ध है। इनके आदि पुरुष लक्ष्मण भट्ट से लेकर अब तक वल्लभसम्प्रदाय में व्यभिचारादि दुष्ट कर्म यथावत् दीख पड़ता है तथा जो लोग इनके मत पर विश्वास

मन्यन्ते तेपि तादृशा एवेति विज्ञातव्यम् ॥ एतादृशस्य पापकर्मकर्त्तुरधर्मात्मनो गुरोस्त्यागे हनने च पुण्यमेव भवति नैव पापञ्चेत्यत्राह मनुः ॥ "गुरुं वा बालवृद्धौ वा ब्राह्मणं वा वहुश्रुतम् ॥ आततायिनमायान्तं हन्यादेवाविचारयन् ॥ १ ॥ नाततायिवधे दोषो हन्तुर्भवति कश्चन ॥ प्रकाशं वाऽप्रकाशं वा मन्युस्तं मन्युमृच्छतीति" ॥२॥ धर्मं त्यक्त्वा ह्यधर्मे प्रवर्तेत स आततायी विज्ञेयः ॥

(प्र०) शुद्धाद्वैतम्प्रकाशरूपं स्वभावत उताऽन्धकाररूपम् ? ॥

(उ०) नाद्यः कुतः स्वभावतः प्रकाशस्वरूपस्य मार्त्तण्डार्थसूर्यापेक्षाभावात् । न चरमः स्वभावतोऽन्धकारस्वरूपञ्चेत्सूर्येणापि तस्य प्रकाशासंभवात् ॥ एवमेव तत्सिद्धान्तमार्त्तण्डस्यापि खण्डनं विज्ञेयम् ॥ अतएव शुद्धाद्वैतमार्त्तण्डसत्सिद्धान्तमार्त्तण्डयोर्नाममात्रमपि शुद्धं नास्ति पुनर्ग्रन्थाशुद्धेस्तु का कथा ॥ एवमेव विद्वन्मण्डनस्यापि खण्डनं विज्ञेयम् ॥ विट्ठल एव यदा विद्वान्नासीत्पुनर्विदुषां मण्डनङ्कर्तुं कथं समर्थः स्यात् ॥ किन्तु

करते और इन वल्लभादि मतस्थ लोगों को गुरु मानते है वे भी वैसे ही जानने चाहिये । ऐसे पाप कर्म कर्त्ता अधर्मी गुरु के त्यागने और मार डालने में पुण्य ही होता है पाप नहीं इस विषय में धर्मशास्त्र का प्रमाण है:—गुरु, बालक, वृद्ध वा वहुश्रुत ब्राह्मण ये सब आततायी धर्मनाशक अधर्म के प्रवर्त्तक हों तो राजा विना विचारे मार डाले । क्योंकि आततायी के मारने में मारने वाले को दोष नहीं लगता चाहे प्रसिद्धि में मारे वा अप्रसिद्धि में सर्वथा क्रोध को क्रोध मारता है किन्तु हिंसा नहीं कहाती । धर्म को छोड़ के सर्वथा जो अधर्म में प्रवृत्त हो वह आततायी कहाता है ॥

प्र०—शुद्धाद्वैत प्रकाशरूप है वा स्वभाव से अन्धकार रूप है ? ॥

उ०—प्रकाशरूप होना पहिला पक्ष इसलिये ठीक नहीं कि यदि स्वभाव से प्रकाशस्वरूप हो तो सूर्य के तुल्य स्वयं प्रकाशरूप होने से मार्तण्ड नामक पुस्तक देखने के अर्थ सूर्य की अपेक्षा न होवे सूर्यप्रकाश की अपेक्षा विना ही कार्य सिद्ध कर सके सो सम्भव नहीं । स्वभाव से अन्धकार स्वरूप होना द्वितीय पक्ष भी ठीक नहीं क्योंकि स्वभाव से ही अन्धकार स्वरूप हो तो सूर्य से भी उस का प्रकाशित होना असम्भव हो जावे इसी प्रकार सत्सिद्धान्त मार्त्तण्ड का भी खण्डन जानो । इस पूर्वोक्त प्रकार शुद्धाद्वैतमार्त्तण्ड और सत्सिद्धान्तमार्त्तण्ड ये दोनों पुस्तक का नाम मात्र भी शुद्ध नहीं है ग्रन्थ के अशुद्ध होने का तो कहना ही क्या है इसी प्रकार विद्वन्मण्डन नामक ग्रन्थ का भी खण्डन जानो । जब तुम्हारा आचार्य विट्ठल ही विद्वान् नहीं था तो फिर

परस्त्रीगमन परधन हरण व्यभिचारमण्डने च सामर्थ्यन्तस्याभून्नान्यत्रेति विज्ञेयम् ॥ तत्र दिङ्मात्रनिदर्शनं वर्ण्यते ॥ निजमुरलिकेति ॥ मुरलिका नादेन तेनागता गोकुलस्य सम्बन्धिन्यः सुन्दर्यः परस्त्रियः कृष्णेन स्नेहाद्भोगार्थं स्वीकृता इत्युक्तम् ॥ प्रतिलक्षणे ॥ युवतिं युवतिं लक्षीकृत्य यः सम्भेदः सङ्गमः कृत्वा तावन्तमात्मान यावतीर्गोपयोषितइत्यादि भ्रष्टवचनस्योक्तत्वाद्विद्वन्मण्डनमित्यस्य नामायोग्यमेव ॥ कुतः ॥ मूर्खव्यभिचाराधर्माणामत्र मण्डनत्वात् ॥ एवमेवाणुभाष्यमप्यसङ्गतमेवेति वेद्यम् ॥ तथा च शतशो भाषाग्रन्था रसभावनादयोपि भ्रष्टतरा एव ॥ तत्रत्यैकदेशनिदर्शनं लिख्यते । राधायाः कुचाद्यङ्गेषु मोदकादिभावना कर्त्तव्या तथा गोलोक एक एव पुरुषः कृष्णः ॥ अन्यास्सर्वाः स्त्रियः सन्ति ॥ अहर्निशन्ताभि सह कृष्णः क्रीडति ॥ पुन. सूर्योदयसमये यावत्यः स्त्रियस्तावन्तः पुरुषाः कृष्णशरीरान्नि सृत्यैकैकामेकैको गृहीत्वा पुष्कलं मैथुनमाचरन्ति सर्वे ॥ तथा वल्लभस्य महाप्रभुरिति सञ्ज्ञाकृता प्रभुरितीश्वरस्यनामास्ति । प्रभुर्गात्राणि पर्येषि विश्वत इत्यादि श्रुतिषु वर्णितम् ॥ तेनेश्वरेणाद्यपर्यन्तं तुल्यः कोपि न भूतो न भविष्यतीत्यधिक-

---

विद्वानों का मण्डन कैसे कर सकता है । किन्तु परस्त्रीगमन पराया धन हरना, और व्यभिचार के मण्डन करने में तो अवश्य उसका सामर्थ्य था अन्य किसी कार्य में नहीं सो उदाहरणमात्र दिखाते हैं विट्ठलकृत विद्वन्मण्डननामकग्रन्थ में (निजमुरलिका०) इत्यादि लिखा है अभिप्राय यह है कि मुरली का शब्द सुनके गोकुल की सुन्दर सुन्दर स्त्रियां आई, कृष्ण ने उन के साथ क्रीड़ा करने के लिये प्रीति से उन का ग्रहण किया। अर्थात् युवति २ स्त्रियों को देख कर जितनी गोपों की स्त्रियां थीं उतने ही अपने एक ही प्रकार के शरीर धारण कर उन से समागम किया इत्यादिभ्रष्ट वचनों के कहने से विद्वन्मण्डन नाम अयोग्य ही है क्योंकि इस पुस्तक में मूर्ख व्यभिचार और अधर्मों का मण्डन है । इसी प्रकार अणुभाष्य भी असङ्गत ही है और ऐसे ही रस भावना आदि सैकड़ों भाषा के ग्रन्थ भी अत्यन्त भ्रष्ट है । इसमें एक बात उदाहरण के लिये लिखते है ॥ राधा के कुच आदि अङ्गों में मोदक आदि की भावना करनी चाहिये ॥ तथा गोलोक में एक कृष्ण ही पुरुष अन्य सब स्त्रियां है कृष्ण उन स्त्रियों के साथ दिन रात क्रीड़ा करते है ॥ सूर्य उदय होते समय जितनी स्त्रियां हैं उतने ही पुरुष कृष्ण के शरीर से निकल के एक २ स्त्री को एक २ पुरुष ग्रहण कर सब अच्छे प्रकार मैथुन करते हैं ॥ और वल्लभ का महाप्रभु नाम रक्खा है प्रभु नाम ईश्वर का है ॥ प्रभु सब शरीरों में व्याप्त है यह वेद में कहा ॥ जब उस ईश्वर के तुल्य अब तक न कोई हुआ न होगा

स्य तु का कथा ॥ पुनर्महाप्रभुशब्देन वल्लभविषये किङ्गम्यते यथा महाब्राह्मणस्तथैव महाप्रभुशब्दार्थोऽवगन्तव्यः ॥ यथा वेदयुक्तिविरुद्धो वल्लभसंप्रदायोऽस्ति तथैव शैवशाक्तगाणपत्यसौरवैष्णवादयस्सम्प्रदाया अपि वेदयुक्तिविरुद्धा एव सन्तीति दिक् ॥

शशिरामाङ्कचन्द्रेब्दे कार्तिकस्यासिते दले ॥
अमायां भौमवारे च ग्रन्थोऽयम्पूर्त्तिमागत. ॥ १ ॥

तो उससे अधिक कौन हो सकता है, फिर महाप्रभु कहने से यही प्रतीत होता है कि जैसे ब्राह्मण के साथ महत् शब्द लगाने से नीच का नाम महाब्राह्मण होता वैसे ही महाप्रभु भी जानना चाहिये जैसे वेद और युक्ति से विरुद्ध वल्लभ का सम्प्रदाय है वैसे ही शैव, शाक्त, गाणपत्य, सौर, और वैष्णवादि सम्प्रदाय भी वेद और युक्ति से विरुद्ध ही है ॥ इति शुभम् ॥

इति श्रीपरमहंसपरिव्राजकाचार्य्य श्रीमद्दयानन्दसरस्वती स्वामिनिर्मितस्तच्छिष्य भीमसेनशर्मकृतभाषानुवाद सहितश्च वेदविरुद्धमतखण्डनो ग्रन्थः समाप्तः ॥

